स्वामी रामतीर्थ के समग्र ग्रन्थ—भाग ४

स्वामी रामतीर्थ

के

लेख व उपदेश

चतुर्थ भाग

(संशोधित संस्करण)

विश्वानुभूति

प्रकाशक

रामतीर्थ प्रतिष्ठान

१४ मारवाड़ी गली, लखनऊ

सन् १९७५

[मूल्य ४ रु०

स्वामी रामतीर्थ

के

लेख व उपदेश

चतुर्थ भाग

(संशोधित संस्करण)

विश्वानुभूति

प्रकाशक

रामतीर्थ प्रतिष्ठान

१४ मारवाड़ी गली, लखनऊ

सन् १९७५

चतुर्थवृत्ति] [मूल्य ४ रु०

प्रकाशक
श्रीरामतीर्थ प्रतिष्ठान
१४—मारवाड़ी गली
लखनऊ—१

मुद्रक
लखनऊ पब्लिशिंग हाउस
३७—कैन्टूनमेन्ट रोड
लखनऊ

चतुर्थ संस्करण सम्बंधी

दो शब्द

स्वामी राम तीर्थ ग्रन्थावली का चतुर्थ संस्करण (विश्वानुभूति) राम प्रेमियों की सेवा में प्रस्तुत है। कुछ समय से इस पुस्तक की मांग उत्तरोत्तर बढ़ती गई है, इसमें धर्म का वास्तविक स्वरूप, परम तत्व का ज्ञान, साधना का अंग, और साधकों के लिए मार्ग दर्शक युक्तियों का सरल, स्पष्ट तथा सुलभ शैली में वर्णन किया गया है।

पुस्तक की छपाई तथा आकार में समयानुसार परिवर्तन किया गया है। आजकल कागज, छपाई तथा अन्य खर्चों की बढ़ोत्तरी के कारण इसके दामों में भी कुछ वृद्धि करना पड़ी, जिसके लिए, आशा है, पाठक गण क्षमा करेंगे।

राम कृष्ण लाल
सं० मंत्री
राम तीर्थ प्रतिष्ठान

१-६-७५

दो शब्द

राम की वाणी अमर है। उसमें आत्मज्ञान का अथाह सागर भरा हुआ है। जो कोई निश्चल चित्त से उसमें अवगाहन करेगा, वह अपरोक्ष ज्ञान से वंचित नहीं रह सकता। रामतीर्थ प्रतिष्ठान निरन्तर उनकी वाणी को जिज्ञासुओं के पास पहुंचाने में प्रयत्नशील रहता है। सबसे पहले सन् १९१९ में राम की वाणी श्री 'रामतीर्थ ग्रन्थावली' के नाम से २८ भागों में प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ था। तदुपरान्त सन् १९२९ में यही वाणी स्वामी रामतीर्थ के लेख व उपदेश के नाम से प्रकाशित होना प्रारम्भ हुई। अब सन् १९५० में इसका तृतीय संस्करण स्वामी राम के समग्र ग्रन्थ के नाम से १६ भागों में प्रारम्भ हुआ है। आज 'विश्वानुभूति' के नाम से इस ग्रन्थावली का यह चतुर्थ भाग पाठकों के हाथों सौंपते हुए हमें परम हर्ष हो रहा है।

सम्प्रति हमारा सभी राम-प्रेमियों से नम्र निवेदन है कि वे पहले ही के समान दूने उत्साह से राम की इस अमर बाणी के प्रचार में हमारा हाथ बटायें।

हरि ॐ

शिवरात्रि
सम्वत् २००७

रामेश्वरसहायसिंह, मंत्री
रामतीर्थ प्रतिष्ठान

विषय-सूची

———

राम-परिचय

["तीन आधुनिक भारतीय सुधारक ।" लेखक, रायबहादुर लाला बैजनाथजी बी० ए०, जज]

"......तीसरे महापुरुष, जिनसे मेरा घनिष्ट परिचय था और जिनके साथ मैं ने काम किया था, पंजाब के स्वामी रामतीर्थ एम्० ए० थे । आप उन उत्तम और उत्कृष्ट आत्माओं में से थे, जो आत्मा की उच्चतम आकांक्षाओं की प्राप्ति का आदर्श उपस्थित करने के लिए कभी कभी मानव-जाति के मध्य में आया करती हैं । स्वामीजी ने पंजाब के गुजरानवाला ज़िले के एक धर्मपरायण ब्राह्मण-वंश में जन्म लेकर, और कोई पूंजी पास न होते हुए भी, २०-२१ वर्ष की अवस्था में, पंजाब युनिवर्सिटी में, गणित में एम० ए० परीक्षा पास करके नाम पैदा किया । इसके बाद वे लाहौर के फ़ोरमैन क्रिश्चियन कॉलेज के प्रोफ़ेसर बनाये गये । परन्तु उपनिषदों के महान् सिद्धान्त 'तत्त्वमसि' (वह तू है) की सत्यता का प्रत्यक्ष अनुभव करने के लिए वे शीघ्र ही अपने इस पद तथा कुटुम्बियों और मित्रों से सारा सम्बन्ध त्यागकर हिमालय की ओर चल दिये । बग़ल में उपनिषद की एक पोथी दबी हुई है, साथी हैं जंगल के पशु-पक्षी और पहाड़ी गंगा का स्वच्छ जल । गरमी, सर्दी और वन की सभी मुसीबतों को झेलता हुआ, जीवन की समस्याओं पर गंभीर विचार में रत, यह नवयुवक बरसों तक लगातार भटकता रहा । कभी वह कैलाश-शिखर पर चढ़ता है, तो कभी कश्मीर में अमरनाथ की यात्रा कर रहा है । यदि आज यमुना के मूल-स्थान यमुनोत्तरी के दर्शन करने गया है, तो कल गंगा के मूलस्रोत गंगोत्री जायगा । नित्य नदी के तट पर विचार में बराबर

दिन-पर-दिन बिता रहा है। इतने पर भी जब वह अनुसन्धान की वस्तु को प्राप्त न कर सका, तो संसार का अस्तित्व भूल कर उसने अपने शरीर को गंगा में डाल दिया और लो, गंगा ने उसे उठाकर एक चट्टान पर बिठा दिया। अन्त को २५ वर्ष की अवस्था में ही १८९८ में उसे उस वस्तु की प्राप्ति हुई, जिसे वह ढूंढ़ रहा था।

अब वह अपने आप को भारत की सेवा में लगाने के लिए पहाड़ों से नीचे उतर कर जन-समाज में आता है, और अनेक सम्प्रदायों तथा राष्ट्रों के हजारों मनुष्यों को उपदेश देता है। केवल अपनी ज्ञान-पिपासा और मनोहर व्यक्तित्व के बल पर ही वह लोगों को अपना अनुयायी बना लेता है। वह शारीरिक आराम-चैन से बेपरवाह है, जो कुछ सादा-से-सादा भोजन उसे मिल जाता है, कर लेता है, और जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की वस्तुओं के सिवा कोई भी चीज़ कभी अपने साथ नहीं रखता। रुपया-पैसा या वस्त्र अथवा दूसरी चीज़ें ज्यों ही उसे भेंट की जाती हैं, वह दूसरों को दे देता है। इस सन्यासी द्वारा प्रेमी भक्तों के दिये हुए स्वादिष्ट भोजन इस कारण त्याग दिये जाते हैं कि जो लोग सत्य का जीवन व्यतीत करने की आकांक्षा रखते हैं, उनके भाग्य में रहता है केवल उच्च विचार और सादा रहन-सहन। न अपनी श्रेष्ठता का व्याख्यान, न आचरणों का अभिमान और न अपनी बड़ाई का भान। जिस किसी का इस स्वामी से संसर्ग हो जाता है, वही उसकी मुस्कराहटों से मोहित हो जाता है, और उसे जान पड़ने लगता हैं, मानों उसके सब संकट और दुःख उस समय दूर हो गये। उन्हें अध्ययन का अनुराग इतना अधिक था कि थोड़े ही समय में पाश्चात्य धार्मिक और तात्विक पुस्तकों का पूरा पुस्तकालय ही पढ़ डाला। उपनिषदों के ऋषियों, व्यास, कृष्ण, शंकर, बुद्ध के वाक्य उतने ही उनकी जिह्वा के अग्र-भाग पर थे, जितने कि शम्स तबरेज़ और मौलाना रूम के। कांट, शोपेनहार, फिचटे और हिगेल उनके उतने ही परिचित थे,

जितने कबीर और नानक। परन्तु उर्दू-काव्य स्वामीजी का विशेष विषय था और लक्षणों से प्रतीत होता है कि उनके पद्य भारतीयों में वेदान्त के अन्य अनेक प्रमाणभूत श्लोकों की तरह प्रचलित हो जायेंगे।

सन् १९०२ में, हम उन्हें जापान होकर अमेरिका जाता हुआ पाते हैं। वहाँ उन्होंने दो वर्ष के काल में अनेक विद्वान् और अग्रणी जनों को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। अमेरिका की 'ग्रेट पैसिफिक रेलरोड कम्पनी' के प्रबन्धकर्ता ने उन्हें 'पुल मैन कार' में स्थान देते हुए कहा था—"उनकी मुस्कराहट दुर्निवार है।" अमेरिका में अपने भक्तों की पूजा-अर्चा से ही उन्हें सन्तोष नहीं हुआ, वहाँ वे भारत का हित संधान करने के लिए प्रयत्न करते रहे। कार्य करना, निरन्तर कार्य करना, उन का मूल मंत्र था। वे कहते थे—"हमारे सामने ठीक तरह का यज्ञ (बलिदान) अर्थात् दीनों की सेवा और रक्षा करने और इस यज्ञ को इस प्रकार करने का प्रश्न है कि कार्य अपने उद्देश्य को ही नष्ट न कर सके। प्रत्येक भारतवासी को अपने से छोटों को, चाहे वे पद, धन, विद्या या शक्ति किसी में छोटे हों, अपने बच्चों की तरह मनाना और उनकी सहायता करना चाहिए और बिना किसी पुरस्कार की इच्छा से माता के उस परम आनन्द को, जो उत्साह और प्रेम-रूपी आत्मिक भोजन के देने से मिलता है, प्राप्त करना चाहिए। यही वास्तविक निष्काम यज्ञ है।" जैसा कि उन्होंने अपने निराले ढंग से कहा था—

"आवश्यकता है, सुधारकों की—
उनकी नहीं, जो औरों को सुधारते हैं,
किन्तु उनकी जो अपने आप को सुधारना चाहते हैं।
उनकी नहीं, जिन्होंने विश्वविद्यालय की डिग्रियाँ प्राप्त की हैं;
किन्तु उनकी, जिन्होंने अपने आप पर विजय पाई है।
अवस्था—ब्रह्मानन्द की जवानी।
वेतन—ईश्वरत्व।

शीघ्र प्रार्थनापत्र भेजो——
जिसमें भिखमंगों की सी दीन याचना न हो;
किन्तु हो जिसमें आदेश-पूर्ण निश्चय——
विश्व के संचालक, अर्थात् **अपने आप** को।"

पश्चिम में दो वर्ष रह कर स्वामीजी भारतवर्ष लौटे; परन्तु इतने ही समय में वहाँ की अमली जिन्दगी का जो ज्ञान उन्होंने प्राप्त किया, वह किसी दूसरे मनुष्य को बीसों वर्षों में भी नहीं हो सकता था। इस ज्ञान को उन्होंने उदारतापूर्वक अपने लेखों और व्याख्यानों द्वारा अपने देश-वासियों के चरणों में रखा है। उनके समस्त लेख और व्याख्यान पूर्व के अगाध पांडित्य और पश्चिम के व्यावहारिक जीवन की छाप से अंकित होते थे। भारत के लिए हल करने योग्य जो प्रश्न हैं, उन्हीं के शब्दों में सुनिये——

"व्यावहारिक बुद्धि की दरिद्रता के साथ-साथ यहाँ पर जनसंख्या की अधिकता है। शारीरिक श्रम से घृणा, जाति-पाँति के अस्वाभाविक विभाग, विदेश-यात्रा का विरोध, बाल-विवाह और स्त्रियों के व्यापक शारीरिक और बौद्धिक अंधकार में रहने को विवश करना आदि सब बातें इस व्यावहारिक बुद्धि के अभाव के ही अन्तर्गत हैं। पूर्व-पुरुषों से दाय (वरसा) मिले बिना हमारा काम नहीं चल सकता। जो समाज इस वरसे का त्याग करता है, वह अवश्य बाहर से नष्ट हो जायगा। साथ ही इस अंश के बहुत अधिक होने से भी काम नहीं चलता। जिस समाज में इसका प्राबल्य है, वह भीतर से नष्ट हो जायगा। उन बड़े आदमियों से जिनके विचार छोटे हैं, देश बलवान् नहीं होता; परन्तु उन छोटे आदमियों से, जिनके विचार बड़े हैं, देश बलिष्ठ होता है। एक औसत भारतीय घर समग्र राष्ट्र की अवस्था का प्रतिनिधि है। दरिद्रता का हेतु केवल आमदनी की कमी और खानेवालों की हर वर्ष वृद्धि नहीं है; परन्तु निरर्थक और निष्ठुर रीतियों में

अनुचित खर्च करने की गुलामी भी है। यदि आबादी की समस्या बिना हल किये छोड़ दी गई, तो राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय मैत्री की सभी चर्चा निष्फल होगी। विदेश यात्रा से जाति या धर्म के नष्ट होने का विचार दूर करना भी इसकी एक औषध है। यह धारणा त्यागी जानी चाहिए कि बच्चों के होने पर ही स्वर्ग में तुम्हारा प्रवेश निर्भर करता है। विवाह को पूर्ववत् मधुर सम्बन्ध बनाना चाहिए। देश में अयोग्य, असमर्थ, असार, परान्न-भोजियों की वृद्धि करने के लिए विवाह मत करो। खाँडे की धार पर तुम्हें शुद्धता प्राप्त करना चाहिए। बिना शुद्धता न वीरता है, न एकता और न शान्ति। शिक्षा के क्षेत्र में, प्रधान कर्त्तव्य हमारे सामने गरीबों और स्त्रियों को शिक्षा देना और अधिक उन्नत देशों में जाकर कृषि-विद्या और कला-कौशल सीखना तथा उन उपयोगी विद्याओं को भारत में खूब फैलाना है। यदि विश्वास की लौ, प्रज्वलित ज्ञान की मशाल, तुम्हारे हृदय में सजीव नहीं है, तो तुम एक कदम भी नहीं बढ़ सकते। ज़बानी जमा खर्च की अपेक्षा, प्रकृति की गहराई में रहना, अपने अस्तित्व की गहराइयों को नापना, तुममें जो आन्तरिक वास्तविकता है, जो प्रकृति में भी आन्तरिक वास्तविकता है, उसे अनुभव करना और प्राप्त करना, 'तत्त्वमसि' की जीती-जागती मूर्ति होना, यही जीवन है, यही अमरता है।"

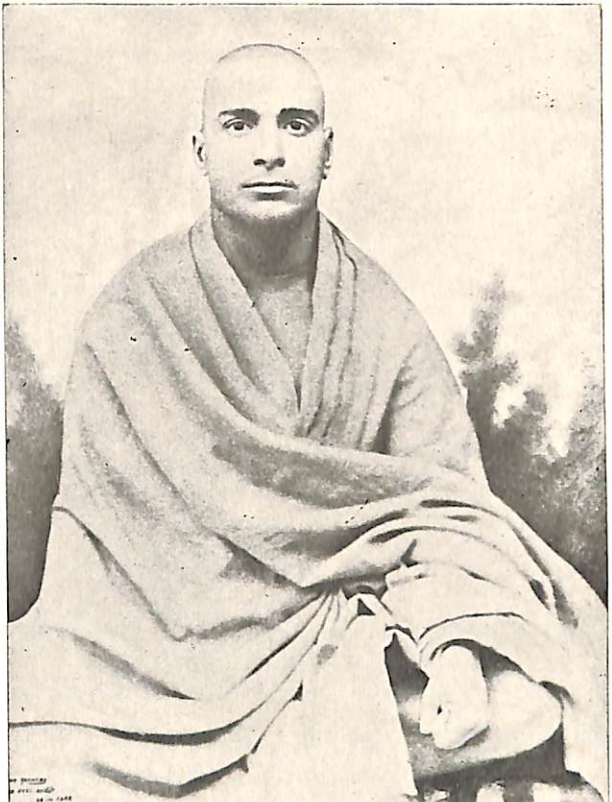
किसी धर्मोपदेशक और किसी समाज-सुधारक ने इस प्रश्न को महामना स्वामीजी से बढ़ कर न तो अधिक स्पष्टता से वर्णन किया है और न इस गुत्थी को सुलझाया है। खेद इसी बात का है कि भारत में उनके कथनों की सत्यता का अनुभव करनेवाले बहुत थोड़े लोग हैं।

अस्तु। थोड़े दिनों तक मैदानों में काम करने के बाद वे अपने साधारण अध्ययन और ध्यान करने के लिए हिमालय में एकान्तवास को चले गए और ३३ वर्ष की अवस्था में टिहरी के निकट, स्नान करते समय गंगा में डूब जाने के कारण उन्होंने यह शरीर त्याग दिया।

उनके उपदेश का सारे पूर्व की दार्शनिक बुद्धिमत्ता का जापान और अमेरिका की व्यावहारिक बुद्धिमत्ता से मेल कराना था। **"न आत्म-अपकर्ष, न जान-बूझकर सिसक-सिसककर आत्म-हत्या, न संसार से बिलकुल विलगता, न संयम-शून्य और विवेकरहित वंश-वृद्धि, न अज्ञानता और दासता में तृप्ति, न भूतकाल का विचारहीन और निर्बलकारी संकीर्तन और न वर्तमान न भविष्य का विस्मरण; परन्तु पुराने आडम्बरों का त्याग और अन्धविश्वास का दूरीकरण"**—यही उस महान् ऋषि का संदेश है। उनके प्रभाव का उन्हीं के साथ अन्त नहीं हो गया; वरन् हर साल वह धीरे-धीरे और तत्परता से केवल हमारे नवयुवकों में ही नहीं, प्रत्युत साधु-समाज में भी, जो पहले उन की उपेक्षा करता और उन्हें संशालुदृष्टि से देखता थां, प्रवेश करता जाता है।

परम ज्ञान और उसका अनुभव

चौथा भाग



स्वामीरामतीर्थ

१

सत्य का मार्ग

(अमेरिका में १ मार्च १९०३ को दिया हुआ व्याख्यान)

जैसा कि समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ है, आज के व्याख्यान का विषय है—"सत्य का मार्ग"। पाश्चात्य लोगों के लिए इस शीर्षक के कुछ अर्थ हो सकते हैं, किन्तु वेदान्त की दृष्टि से यह शीर्षक भ्रमात्मक है। "सत्य" का मार्ग या 'सत्य' के लिए मार्ग एक असंगत बात है। 'सत्य' दूर नहीं है, तो उसका मार्ग फिर कैसे हो सकता है ? सत्य अब भी तुम्हारे पास है, वह सदा से तुम्हारा अपना आप, तुम्हारी आत्मा है। तुम अब भी उसमें हो; नहीं-नहीं, तुम स्वयं सत्य हो। तुम वही हो। इस तरह,

"सत्य का मार्ग"—ऐसे शब्दों का व्यवहार करना ही ग़लती है। ईश्वर-ज्ञान की प्राप्ति, आत्मदेव (ब्रह्म) का अनुभव, ऐसी वस्तु नहीं है जिसे सिद्ध करना है, ऐसी चीज़ नहीं है जिसे पाना है, ऐसा काम नहीं है जिसे पूरा करना है, वह तो पूरा हुआ ही है। तुम तो अब भी वही हो। तुम्हें केवल इच्छाओं के जाल को, जो तुम्हें फँसाये हुए है, तोड़ डालना है, तुमने जो कुछ किया है केवल उसे मिटाना भर है। यदि 'करने' शब्द के विधि-आत्मक अर्थ ग्रहण किये जायँ, तो ईश्वर (सत्य) की प्राप्ति के लिए तुम्हें कुछ भी नहीं करना है। अपना कारागार बनाने में तुमने जो कुछ किया सिर्फ उसे मिटा भर दो और फिर तुम ईश्वर ही हो, सत्यस्वरूप ही हो। किन्तु जो कुछ किया जा चुका है उस पर हरताल फेर देने का यह काम कुछ लोगों के लिए अति कठिन हो जाता है। और इसलिए "सत्य के मार्ग" के सम्बन्ध में हम अपने किये हुए को मिटाने की विधि पर विचार करेंगे। अपने बन्धनों को तोड़ने में कुछ यत्न निस्सन्देह करना पड़ेगा।

अच्छा, तुम्हें बांधने वाले ये फन्दे, ये बन्धन, ये जंजीरें और बेड़ियाँ क्या वस्तु हैं? तुम्हारे कान आज इस सत्य का आदर कर सकें या नहीं, अमेरिका वाले और यूरोपीयन लोग इस कथन की सुन्दरता को आज समझ सकें या नहीं, किन्तु इसकी सत्यता में कोई अन्तर नहीं पड़ने का। सच तो यह है कि तुम्हारी सारी आसक्तियाँ और वासनायें, तुम्हारा राग-द्वेष और सांसारिक लगाव ही तुम्हारे लिए बेड़ियाँ और ज़ंजीरें बनी हुई हैं। यही तुम्हें बांधती हैं। यही तुम्हें ईश्वर को नहीं देखने देतीं, यही तुम्हारा कारागार है। तुम्हारी कामनायें तुम्हें बांधती हैं। तुम दो मालिकों की सेवा नहीं कर सकते। तुम एक ही समय में परमेश्वर और माया की सेवा नहीं कर सकते। जब तक तुम शरीर के दास हो, तब तक तुम विश्व के विधाता नहीं बन सकते। सत्य, आत्म-तत्व को प्राप्त करना अखिल विश्व का स्वामी बनना है। और कामनाओं को इष्ट बनाना, बंधन को स्वीकार करना है। दूसरे शब्दों में सांसारिक वस्तुओं, स्थूल पदार्थों की इच्छा करना

ही तुम्हारी दास्यता, तुम्हारी गुलामी का कारण है। प्रत्येक मनुष्य ईसामसीह (महान् पुरुष) होना चाहता है, प्रत्येक मनुष्य सत्य का अनुभव करना चाहता है, सिद्ध और महात्मा बनना चाहता है, किन्तु इसका मूल्य चुकाने के लिए बहुत ही थोड़े लोग तैयार होते हैं, विरला ही कोई मिलता है।

भारतवर्ष में एक बड़ा कसरती पहलवान था। गोदना गुदवाने के लिए अपनी भुजा पर सिंह की तसवीर खुदवाने के लिए उसे एक नाई की ज़रूरत पड़ी। उसने नाई से अपनी दोनों भुजाओं पर एक बड़ा तेजस्वी सिंह अंकित कर देने को कहा। उसने कहा—मेरा जन्म सिंह राशि में हुआ था, लग्न-घड़ी बड़ी अच्छी थी और मैं बड़ा बहादुर हूं, ऐसा लोग मुझे समझते भी हैं। नाई ने सुई ली और सिंह चित्रित करना अर्थात् गोदना आरम्भ किया। किन्तु जरा-सी सुई चुभाते ही पहलवान को कष्ट मालूम हुआ। साँस खींचकर वह नाई से बोला—"ठहरो-ठहरो, यह क्या कर रहे हो ?" नाई ने कहा कि मैं शेर की दुम अंकित करने लगा हूं। वास्तव में, यह मनुष्य सुई के चुभने की वेदना न सह सका और भद्दा-सा बहाना करके बोला—"तुम यह नहीं जानते कि शौक़ीन लोग अपने कुत्तों और घोड़ों की दुम कटवा डालते हैं और इस लिए दुमकटा सिंह ही बड़ा बली सिंह समझा जाता है ? तुम सिंह की दुम क्यों बनाते हो ? दुम की कोई ज़रूरत नहीं।" नाई ने कहा—"बहुत खूब ! मैं पूंछ न अंकित करूंगा, सिंह के दूसरे अंग गोदूंगा।" नाई ने फिर सुई उठाई और उसके शरीर में भोंकी। इस बार भी वह न सह सका और झुंझलाकर बोला—"अब तुम क्या करने वाले हो ?" नाई ने कहा—"अब मैं सिंह के कान खींचने लगा हूं।" पहलवान ने कहा—"अरे नाई ? तू बड़ा मूर्ख है ! क्या तू नहीं जानता कि लोग अपने कुत्तों के कान कटवा डालते हैं ? लम्बे कानों वाले कुत्ते घरों में नहीं रखे जाते। क्या तू यह नहीं जानता कि बिना कानों का ही सिंह सर्वोत्तम होता है ?" नाई रुक गया। कुछ देर बाद नाई

ने सुई उठाई और फिर गोदने लगा। पहलवान उसे न सह सका और बिगड़कर बोला—"अब तू क्या करने लगा है नाई ?" नाई ने कहा—"अब मैं सिंह की कमर गोदने लगा हूं।" पहलवान ने कहा—"तूने हम लोगों का काव्य नहीं पढ़ा है ? भारतीय कवियों का श्रेष्ठ वर्णन तूने नहीं पढ़ा है क्या ? शेरों की कमर हमेशा बहुत छोटी, पतली, नाममात्र की चित्रित की जाती है। तुझे सिंह की कमर अंकित करने की ज़रूरत नहीं।" अब तो नाई ने अपने रंग और गोदने की सुई फेंक दी और गुदवानेवाले से कहा—"बस, आप सिंह गुदवा चुके !"

यह एक मनुष्य है जो अपने को सिंह राशि में जन्मा बतलाता है; जो बड़ा पहलवान, बड़ा कसरती होने का दम भरता है; यह आदमी अपने को शेर कहता है। वह अपने सारे बदन पर सिंह गुदवाना चाहता है, किन्तु सुई का चुभना सह नहीं सकता। अधिकांश मनुष्य ऐसे ही होते हैं जो ईश्वर को देखना चाहते हैं, वेदान्त का अनुभव करना चाहते हैं, इसी क्षण, इसी घड़ी में, पूर्ण सत्य को जानना चाहते हैं, प्रत्येक बात को पूरा कर डालना चाहते हैं, आधे मिनट में ईसामहीह (महान् पुरुष) हो जाना चाहते हैं। पर उस शेर (सत्य) को अपने अन्तःकरण में अंकित करवा लेने का, उस सदाचार रूप शेर को अपने हृदय में चित्रित करवाने का जब समय आता है, तब वे डंक लगते ही भाग खड़े होते हैं, तब बहानाबाजी करके आगा-पीछा करने लगते हैं।" "वस्तु तो मैं चाहता हूं, पर दाम न दूंगा।"

ईश्वरानुभव और सत्य को प्राप्त करने के लिए, तुम्हारी प्यारी-से-प्यारी कामनायें और इच्छायें आर-पार छेदी जायेंगी, तुम्हें अपनी प्रियतम वासनाओं और आसक्तियों को काटना होगा, तुम्हें अपने समस्त अन्धविश्वासों और पक्षपातों को मिटा देना होगा, तुम्हें अपनी सकल पूर्वकल्पित कल्पनाओं को काटकर फेंक देना होगा। नीच और तुच्छ बनाने वाली सभी आकांक्षाओं से तुम्हें अपना पिण्ड छुड़ाना होगा, तुम्हें अपने

को पवित्र करना पड़ेगा । विशुद्धता, विशुद्धता ! बिना मूल्य चुकाये तुम ईश्वर को नहीं पा सकते, तुम अपने जन्मजात स्वत्व को लाभ नहीं कर सकते । शुद्ध हृदयवाले सचमुच धन्य हैं, क्योंकि उन्हें परमेश्वर के दर्शन होंगे; किन्तु हृदय की यह शुद्धता, विमलता क्या वस्तु है ? केवल वैवाहिक पापों से बचने का ही नाम हृदय की शुद्धता नहीं है । यह तो उसके अर्थ हैं ही, किन्तु और भी बहुत कुछ उसके अर्थ में है । आज ये वचन तुम्हें चाहे अच्छे लगें या न लगें; किन्तु एक दिन आयेगा जब ये तुम्हें अवश्य अच्छे लगेंगे, आज या कल तुम्हें इस परिणाम पर पहुंचना ही पड़ेगा । तात्पर्य यह कि आसक्ति मात्र, वह चाहे आप को अपने घर से हो, चाहे अपने पिता से, माता या बच्चे से और चाहे अपने कुत्ते से हो या अपनी घड़ी से, छोटी-बड़ी किसी चीज़ से हो, सत्य-जिज्ञासु के लिए, तुरन्त ही पूर्ण सत्य पर अधिकार पाने के इच्छुक के लिए वह आसक्ति उतनी ही नीच और दुर्बल बनानेवाली है, जितना कि व्यभिचार । हृदय की शुद्धता का अर्थ है संसार के सब पदार्थों की आसक्ति से अपने आपको मुक्त कर लेना; त्याग, पूर्ण त्याग, उससे इतर कुछ नहीं । यह है हृदय की पवित्रता का अर्थ । शुद्ध अन्तःकरण वाले सचमुच धन्य हैं, क्योंकि वे ईश्वर के दर्शन करेंगे । इस पवित्रता को प्राप्त करो और तुम्हें ईश्वर के दर्शन होंगे ।

प्राचीन इतिहास में अटलान्टा की एक बड़ी सुन्दर कथा है । उसमें ऐसा कहा है कि जो मनुष्य उससे ब्याह करना चाहता था, उसे उसके साथ दौड़ की बाजी लगानी पड़ती थी । कोई भी मनुष्य दौड़ में उससे आगे नहीं निकल पाता था । एक ने अपने देवता जूपिटर की शरण ली और दौड़ में अटलान्टा से आगे निकल जाने के लिए अपने इष्टदेव से प्रार्थना की । देवता ने उसे बड़ी ही विलक्षण राय दी । उसने इस मनुष्य से कहा कि दौड़ के रास्ते पर सोने की ईंटें बिछा दो । सच तो यह है कि दौड़ में अटलान्टा को जीत लेने के लिए कोई और सहायता

जूपिटर अपने इस भक्त को नहीं दे सकते थे। अखिल विश्व में सबसे तेज़ और बलवान होने का वरदान अटलान्टा को सुरेश (जूपिटर) से पहले ही मिल चुका था। बस, जूपिटर के इस भक्त ने दौड़ के पूरे चक्कर पर सोने की ईंटें डाल दीं। और अटलान्टा को अपने साथ दौड़ने के लिए आह्वान किया। दोनों ने दौड़ना प्रारंभ किया। यह मनुष्य स्वभावत: अटलान्टा से दौड़ में बहुत दुर्बल पड़ता था। एक क्षण में वह उससे आगे निकल गई। किन्तु जब वह मनुष्य उसकी नजर से ओट हो गया, तब उसकी दृष्टि रास्ते पर पड़ी हुई सोने की ईंटों पर गई और वह उन्हें बटोरने को रुक गई। इस प्रकार जब वह सोने की ईंटें बटोरने में लगी थी, तब वह भक्त उससे आगे निकल गया। इसके एक या दो मिनट बाद उसने फिर उसे पकड़ लिया; किन्तु फिर दौड़ के चक्कर की बाईं ओर उसे दूसरी ईंट दिखाई दी। वह उस ईंट को उठाने गई और ले आई। इस बीच में जूपिटर का वह भक्त उससे आगे निकल गया; किन्तु कुछ ही देर में अटलान्टा ने उसे फिर पकड़ लिया। फिर उसे कुछ और सोने की ईंटें मिलीं। वह उन्हें उठाने के लिए रुकी। इसी बीच में वह आदमी फिर आगे निकल गया। यही होता रहा। दौड़ समाप्त होने तक अटलान्टा के पास सोने का बड़ा भारी बोझ हो गया। इस बोझे को ढोकर दौड़ में आगे निकल जाना उसके लिए बड़ा कठिन हुआ। अन्त में वह आदमी जीत गया और अटलान्टा हार गई। शर्त के अनुसार अटलान्टा के साथ उस का विवाह हो गया। अटलान्टा उसे मिल गई। अटलान्टा की बटोरी हुई सोने की ईंटें भी उसे मिल गईं। उसे सभी कुछ मिल गया।

धर्म के रास्ते पर और सत्य के मार्ग पर जो लोग चलना चाहते हैं, उनमें से अधिकांश का यही ढंग है। सत्य के मार्ग पर जब तुम चलना शुरू करते हो, तब तुम्हें अपने आस-पास अनेक प्रकार के मायिक आकर्षण और लौकिक प्रलोभन मिलते हैं। किन्तु ज्यों ही तुम उन

सांसारिक प्रलोभनों तथा सुखों को भोगने के लिए तैयार होगे, त्योंही तुम अपने को पिछड़ा हुआ पाओगे। तुम दौड़ में हारने लगोगे। अपना समय व्यर्थ गँवा दोगे और अपना पथ कंटकाकीर्ण बना लोगे। नहीं, नहीं, अन्त में अपना सर्वस्व खो बैठोगे। सांसारिक आसक्ति और भौतिकता से संतर्क रहो। सांसारिक सुखों को भोगते हुए तुम कदापि सत्य को नहीं पहुँच सकते। कहावत है कि यदि तुम सत्य को स्वीकार करोगे, तो सांसारिक सुखों को भोगने के योग्य न रह जाओगे। सांसारिक सुखों को तुम भोगो, तो सत्य तुम्हारे हाथ से निकल जायगा, तुम से आगे बढ़ जायगा। राम तुम से आज यथार्थ सत्य कह रहा है। अनेक लोग राम के पास आते हैं और बार-बार उससे कहते हैं कि वे आत्मानुभव के इच्छुक हैं। तुम इसी क्षण आत्मानुभव कर सकते हो। विषयासक्ति से अपने को मुक्त कर लो और ईर्ष्या और राग-द्वेष की जड़ काट डालो और तुम इसी क्षण मुक्त हो। अच्छा, ईर्ष्या क्या है? घृणा क्या है? वह है औंधा अनुराग। किसी से हम घृणा तभी करते हैं, जब किसी अन्य वस्तु पर हमारी आसक्ति होती है। यहाँ पर तुम प्रश्न करोगे कि अपने लड़कों, भाई-बहनों, पति-पत्नियों से हम कैसे छुटकारा पा सकते हैं? यह तो तुम्हीं जानो। कैसे और किस उपाय से? यह स्वयं तुम्हारे जानने की बात है; किन्तु सच यह है कि सत्य ही तुम्हारा पिता होना चाहिए, सत्य ही तुम्हारी माता, सत्य ही तुम्हारी स्त्री, सत्य ही तुम्हारा बाबा, तुम्हारा शिक्षक, तुम्हारा घर, तुम्हारी दौलत, तुम्हारा सब कुछ होना चाहिए। प्रत्येक पदार्थ से अपनी आसक्ति को हटालो और एक वस्तु, एक तत्व, एक सत्यस्वरूप, एक अपनी आत्मा पर अपने आप को एकाग्र करो; तुरन्त ही, इसी क्षण तुम्हें आत्मानुभव की प्राप्ति होगी।

भारतीाय भाषा में एक सुन्दर गीत है, जिसे यहाँ गाने की कोई जरूरत नहीं। गीत का अर्थ यह है कि यदि सत्य को पाने के रास्ते में तुम्हारा पिता विघ्नकर्ता हो, तो उसी तरह उसे रौंद कर चले जाओ, उसी

तरह उसे पार कर जाओ, जिस तरह भारत के एक वीर बालक प्रह्लाद ने अपने पिता को त्याग दिया था, क्योंकि वह उसके सत्यानुभव के मार्ग में कंटक बना था। यदि सत्य को अनुभव करने के मार्ग में तुम्हारी माता बाधक बनती हो, तो उसे त्याग दो। *यही बात नई इंजील (न्यू टेस्टामेंट) कहती है। हिन्दू इंजील भी यही कहती है। अपने माता-पिता के कल्याण के लिए सत्य को प्यार करो। अपने माता-पिता का वहीं तक आदर करो; जहाँ तक वे सत्य की ओर तुम्हारी उन्नति को नहीं रोकते। यदि तुम्हारा भाई तुम्हारे सत्यानुभव के मार्ग में खड़ा होता है, तो उसे उसी तरह दूर कर दो जिस तरह विभीषण ने अपने बड़े भाई रावण को दूर कर दिया था। यदि तुम्हारी स्त्री तुम्हारी सत्य-प्राप्ति के मार्ग में विघ्नरूप है, तो उसे ठीक भर्तृहरि की तरह दूर हटा दो। यदि तुम्हारा पति तुम्हारे सत्यानुभव के मार्ग में रोड़ा बनता है, तो मीरा-बाई की भांति उसे तिलांजलि दे दो। यदि तुम्हारा गुरू, तुम्हारा धर्म पिता, तुम्हारा पथ-प्रदर्शक, तुम्हारे सत्यानुभव के मार्ग में बाधा डालता है, तो उसे भीष्म की भांति फेंक दो, परे कर दो, क्योंकि तुम्हारा असली सम्बन्धी, तुम्हारा सब से सच्चा मित्र, केवल एक सत्य है। और सब नातेदार तथा साथी क्षणस्थायी या अस्थिर हैं, एक दिन के हैं, किन्तु सत्य सदा तुम्हारे माता-पिता की अपेक्षा तुम्हारे अधिक निकट है। तुम्हारी स्त्री, बच्चे, मित्रों की अपेक्षा सत्य तुम्हारे अधिक समीप है। अतएव राजा-प्रजा, माता-पिता, बाल-बच्चे, इष्ट-मित्र—हर एक से सत्य का अधिक सम्मान करो।

भारत के एक राजा के जीवन से एक बड़ा अच्छा दृष्टान्त मिलता है। वह सत्य के मार्ग का पथिक था। कहते हैं कि बरफ़ में अपनी देह गला देने को वह हिमालय पर चढ़ रहा था। इसकी बड़ी लम्बी चौड़ी

---

*जाके प्रिय न राम वैदेही, तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही। —तुलसीदास

कथा है। तुम्हें समग्र कथा सुनाने की राम को ज़रूरत नहीं है। किसी कारण से, किसी गुरुतर कारण से वह अपनी स्त्री और अपने चार भाइयों के साथ हिमालय की चोटियों पर चढ़ रहा था। कहते हैं कि ऐसा करके वह धर्म-पथ पर चल रहा था, वह सत्य के अन्वेषण के लिए जा रहा था। वह आगे चल रहा था, बढ़ता चला जाता था। उसका छोटा भाई उसके पीछे जा रहा था और उसके छोटे भाई के बाद उसका एक और भाई था और इस तरह पर ठीक क्रम से सब भाइयों के पीछे इस राजा की अर्द्धाङ्गिनी थी। वह आगे जा रहा है, उसका मुख अपने लक्ष्य की ओर है और आँखें सत्य पर जमी हुई हैं। उसने सुना कि उस की रानी उसके पीछे विलाप कर रही है। उसके पैर लड़खड़ाते थे, वह उसका पीछा नहीं कर सकती थी, वह थक गई थी और मरणासन्न थी। किन्तु राजा ने अपना मुख उसकी ओर नहीं फेरा। उसने अपनी स्त्री से कहा, कुछ कदम बढ़ाकर मेरे पास आ जाओ, तब मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूंगा। आओ, मेरे पास आ जाओ, मुझ तक आ जाओ। किन्तु तीन पग बढ़ कर वह उसके पास न पहुंच सकी। वह बहुत पीछे रह गई, उसके पास न पहुंच सकी और राजा भी पीछे नहीं लौटा। सत्य से एक पग भी पीछे लौटने की अनुमति नहीं होना चाहिए। सम्राट् युधिष्ठिर कदापि एक पग भी पीछे न लौटे। स्त्री लड़खड़ा कर गिर जाती है, किन्तु उसके लिए सम्राट सत्य की ओर से मुंह नहीं फेर सकता। तुम्हारे पूर्व जन्मों में तुम्हारी हज़ारों स्त्रियाँ हो चुकी हैं और यदि तुम्हारे कुछ भावी जन्म हैं, तो न जाने फिर कितनी बार तुम्हारा विवाह होगा; न जाने कितने तुम्हारे नातेदार हो चुके हैं और भविष्य में कौन जाने कितने सम्बन्धी होंगे। इन सम्बन्धियों और बन्धनों के लिए तुम्हें सत्य से मुंह न फेरना चाहिए। आगे बढ़ो, आगे बढ़ो, कोई चीज तुम्हें लौटाने न पाये। अपनी स्त्री की अपेक्षा सत्य का अधिक आदर करो। भगवान् का अधिक सम्मान करो। सत्य का सम्पूर्ण मानव जाति से सम्बन्ध है,

आत्मदेव सर्वकालीन है, नित्य है और तुम्हारे सांसारिक बन्धन ऐसे नहीं हैं, वे क्षणिक हैं। इस कानून को ध्यान में रखो कि जो कुछ वास्तव में तुम्हारे लिए हितकर है, वह तुम्हारी स्त्री और तुम्हारे साथियों के लिए भी अवश्य हितकर है। यदि तुम्हें समझ पड़े कि अपनी स्त्री से अलग रहने में वास्तव में तुम्हारी भलाई है, तो याद रखो कि तुमसे अलग रहना उसके लिए भी वास्तव में हितकर है। यह नियम है। जो सत्य या परमेश्वर तुम्हारे व्यक्तित्व या अस्तित्व के मूल में है, वही तुम्हारी स्त्री के व्यक्तित्व का भी मूलाधार है। सम्राट् युधिष्ठिर की रानी गिर पड़ी। किन्तु राजा सीधा चला गया और अपने भाइयों से पीछे चले आने को कहा। कुछ देर तक वे उसके साथ दौड़े, किन्तु अब तो सब से छोटा भाई उसके साथ चलने में असमर्थ हो गया। थकावट के मारे वह लड़खड़ाने लगा और जब गिरने को हुआ, तब चिल्लाया—"भाई! मेरे भाई युधिष्ठिर! मैं मरता हूं, मुझे बचाओ, मुझे . . .।" राजा युधिष्ठिर ने लक्ष्य (सत्य) से अपनी आँखें नहीं घुमाईं; वह बढ़ता ही गया, आगे ही बढ़ता गया। उसने अपने भाई से केवल पुकार कर कहा—"दो या तीन पग दौड़ कर मेरे पास पहुंच जाने की हिम्मत करो और फिर मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूंगा। परन्तु किसी भी कारण से अपने साथ तुम्हें लेने को मैं एक पग भी पीछे नहीं लौट सकता।" वह आगे बढ़ता जा रहा है। सब से छोटा भाई मर गया। कुछ देर बाद दूसरा भाई चिल्लाया, जो अब सब से पीछे था और वह भी लड़खड़ाने वाला ही था। उसने सहायता के लिए पुकारा—"भाई! भैया युधिष्ठिर! मेरी सहायता करो, मेरी मदद करो, मैं गिरा चाहता हूं।" किन्तु भाई युधिष्ठिर पीछे नहीं लौटता वह बढ़ा चला जाता है इस तरह सब भाई मृत्यु को प्राप्त हुए, किन्तु महाराजा युधिष्ठिर टस से मस न हुआ। एक पग भी नहीं लौटा। वह चला ही जाता है, धर्म के मार्ग पर वह बढ़ता ही जाता है। आगे चलकर कहानी है कि जब युधिष्ठिर सत्य की सर्वोच्च चोटी

पर पहुंच गया, जब वह अभीष्ठ स्थान पर पहुंच गया, तब स्वयं सत्य-स्वरूप परमात्मदेव उसके सामने आविर्भूत हुआ। जैसा कि हमें इंजील में पढ़ने को मिलता है कि परमेश्वर कपोत के रूप में दिखाई पड़ा, उसी तरह हिन्दू धर्म-शास्त्रों में भी किसी-किसी व्यक्ति को देवदूत या वैकुण्ठपति इन्द्र के रूप में ईश्वर के दर्शन देने की बात हमारे पढ़ने में आती है। इस तरह आगे कथा में वर्णित है कि जब महाराजा युधिष्ठिर सत्य के शिखर पर पहुँच गया, तब मूर्तिमान सत्य ने प्रकट होकर उसे सशरीर वैकुण्ठ चलने को, स्वर्गारोहण करने को कहा। जिस तरह आप इंजील में लोगों का जीते जी स्वर्गारोहण पढ़ते हैं, उसी प्रकार महाराजा युधिष्ठिर से जीते जी स्वर्गारोहण करने की प्रार्थना वाली यह कथा है। तभी अपनी दाहिनी ओर देखने पर राजा को एक कुत्ता अपने पास दिखाई दिया। राजराजेश्वर युधिष्ठिर ने कहा—"ऐ परमात्म-देव! ऐ सत्य! यदि तुम मुझे उच्चतम वैकुण्ठ में ले जाना चाहते हो हो, तो इस कुत्ते को भी मेरे साथ ले चलना पड़ेगा। इस कुत्ते को भी मेरे साथ श्रेष्ठतम स्वर्ग को चढ़ा ले चलिए।" आगे कहानी कहती हैं कि देहधारी परमेश्वर ने कहा—"महाराज युधिष्ठिर! ऐसा नहीं हो सकता। कुत्ता इस योग्य नहीं कि सर्वश्रेष्ठ स्वर्ग को पहुँचाया जाय, कुत्ते को अभी अनेक योनियों में जन्म लेना है, कुत्ते को अभी मनुष्य योनि में जन्म लेना है और उत्तम जीवन व्यतीत करना है। उसे पवित्र और शुद्ध मनुष्य की तरह अभी रहना है और तब वह परम स्वर्ग को चढ़ाया जायगा। तुम सदेह सर्वश्रेष्ठ स्वर्ग में जाने के योग्य हो; किन्तु कुत्ता नहीं है।" तब तो महाराजा युधिष्ठिर बोले—'ऐ सत्य! ऐ परमेश्वर! मैं यहाँ तुम्हारे लिए आया हूँ, न कि स्वर्ग या वैकुण्ठ के लिए। यदि आप मुझे सर्वश्रेष्ठ बैकुण्ठ में ले जाना और वहाँ सिंहासन पर बैठाना चाहते हैं, तो आपको इस कुत्ते को भी मेरे साथ ले चलना पड़ेगा। मेरी स्त्री मेरे साथ न आ सकी, वह धर्म के मार्ग पर डगमगा

गई । मेरा सब से छोटा भाई मेरे साथ न चल सका, वह सत्य के मार्ग पर कचियां गया, मेरे दूसरे भाई भी मेरा साथ न दे सके, उन्होंने मुझे छोड़ दिया, वे दुर्बलता के वशीभूत हो गये, वे प्रलोभनों में फँस गये और वह मेरे साथ नहीं चल सके। अकेला यह कुत्ता मेरे साथ आया है। यह कुत्ता है। इसने दु:ख-दर्द में मेरा साथ दिया है, यह मेरे प्रयत्नों में मेरा साझी हुआ है, मेरे संघर्षों में इसने हिस्सा लिया है, मेरी चिन्ताओं में हाथ बँटाया है, मेरे साथ इसने परिश्रम किया है। यह कुत्ता है। जब इस कुत्ते ने मेरी कठिनाइयों में, मेरे कठिन प्रयत्नों और झंझटों में मेरा साथ दिया है, तब मेरा बैकुण्ठ या स्वर्ग वह क्यों न भोगेगा ? मैं तुम्हारे स्वर्ग या वैकुण्ठ को कदापि न जाऊंगा। यदि तुम इस कुत्ते को मेरे साथ नहीं आने देते, तो मुझे तुम्हारे वैकुण्ठ की जरूरत नहीं है।" कथा बताती है कि देहधारी सत्य या ईश्वर ने एक बार फिर महाराज युधिष्ठिर से कहा—"कृपा करके यह अनुग्रह मुझ से न माँगो, अपने साथ इस कुत्ते को ले चलने के लिए मुझ से न कहो।" किन्तु महराज युधिष्ठिर ने कहा—"देव ! आप चलते बनिये। आप देहधारी सत्य या परमेश्वर नहीं हैं। आप कोई असुर हैं। आप परमेश्वर या सत्य नहीं हो सकंते; क्योंकि यदि आप सत्य होते तो अपने सामने कोई अन्याय क्यों होने देते। क्या आप के ध्यान में नहीं आता कि यदि आप केवल मुझे स्वर्ग का भोग देते हैं और इस कुत्ते को मेरे सुख का साझीदार नहीं बनाते तो आप इस कुत्ते के साथ अन्याय करते हैं; जिसने मेरे कष्टों को बँटाया है। यह अनीति, देहधारी सत्य या परमेश्वर को फबती नहीं है।" कथा बताती है कि इस पर देहधारी सत्य या परमेश्वर अपने सच्चे रूप में प्रकट हुआ और लो, वह कुत्ता, कुत्ता न रह गया बल्कि स्वयं सर्वशक्तिमान महाप्रभु के पूर्ण तेज से युक्त दिखाई पड़ा। उस राजा की परख और परीक्षा हो रही थी और अन्तिम परीक्षा में, अन्तिम कस में, वह सफल सिद्ध हुआ।

इस तरह पर तुम्हें भी सत्य के पथ पर चलना है। यदि तुम्हारे अति नगीची और प्रियतम साथी और कुटुम्बी भी धर्म के रास्ते पर तुम्हारे साथ न चल सकें, तो उन को अपने मित्र न समझो और यदि एक कुत्ता सदाचार के पथ में तुम्हारा साथ दे, तो उस कुत्ते को तुम्हें अपना अति नगीची और प्रियतम प्राणी समझना होगा। इस तरह तुम्हें अपने धर्माचरण में सहयोग के सिद्धान्त पर अपने मित्र बनाने चाहिए। किसी ऐसे को अपना मित्र न बनाओ, जो तुम्हारी दुष्प्रकृति का पक्षपाती हो। यदि इस सिद्धान्त पर तुम अपने मित्र चुनोगे कि उनमें भी वही कुप्रवृत्तियाँ हैं जो तुम में हैं, तो पीड़ा चिन्ता और विकट वेदना तुम्हें अवश्य भोगना पड़ेगी।

एक हिन्दू महात्मा के सम्बन्ध में कहते हैं कि एक बार वह भूखा सड़क पर जा रहा था। आप जानते हैं कि हिन्दुस्थान में महात्मा लोग जब भूखे होते हैं, तब पहाड़ या गुफा से उतर कर मार्ग पर विचरते हैं और शरीर-रक्षा निमित्त भोजन माँगते हैं। बहुत कम अवसरों पर ही वे सड़कों पर आते हैं। आम तौर पर वे नगरों से बाहर वनों में रहते हुए ईश्वर के ध्यान में अपना सारा समय बिताते हैं। भूखे महात्मा को भोजन कराया गया। (यदि राम भी कुछ खा लेता है, तो उसे क्षमा करने के लिए आपके पास यह उचित कारण है।) एक महिला उसके खाने के लिए उत्तम भोजन लाई। उसने रोटी लेकर अपने रुमाल (अंगौछे) में रख ली और भारतीय साधुओं के दस्तूर के अनुसार घर से निकलकर जंगल की राह ली। वहाँ उसने रोटी पानी में डाल दी और भिगोकर खाली। दूसरे दिन फिर मामूली समय पर वह नगर में आया। फिर वही महिला उसके पास आई और कुछ बहुत ही स्वादिष्ट भोजन उसने उसे खाने को दिया। वह लौट गया। तीसरे दिन भी वही स्त्री स्वादिष्ट आहार लाई, पर साधु को देते समय उसने कहा—"मैं तुम्हारी राह देखा करती हूँ। आज तुम्हारी राह देखते-देखते, दरवाजे की ओर ताकते-ताकते मेरी आँखें दुखने लगी हैं। तुम्हारे नेत्रों ने मुझे मोह लिया है।"

उस महिला के मुख से निकले हुए यह वचन सुनकर साधु चला गया फिर एक दूसरे दरवाजे पर गया, जहाँ उसे कुछ भोजन मिला। उस भोजन को लेकर वह वन में चला गया और उस पहली महिला के दिये भोजन को, जिसने उसके प्रति अपने प्रेमभाव की सूचना दी थी, उसने नदी में फेंक दिया और दूसरी महिला के भेंट किये हुए भोजन को उसने खाया। क्या आप सोच सकते हैं कि दूसरे दिन उसने क्या किया? लोहे के सूजे को खूब तपाकर उससे अपनी आँखें छेदकर निकाल डालीं और उन को अपने अंगौछे में बांध कर एक लकड़ी के सहारे बड़ी कठिनाई से रास्ता टटोलते-टटोलते वह उस महिला के घर पर पहुँचा, जिसने उससे प्रेम प्रकट किया था। उसने महिला को बड़ी उत्सुकता से अपनी राह देखते पाया। साधु की आंखें जमीन पर गड़ी हुई थीं। महिला ने इस पर ध्यान नहीं दिया कि साधु ने अपनी आँखें छेदकर बाहर निकाल ली हैं। ज्योंही वह कोई अति स्वादिष्ट पदार्थ उसे खाने के लिए देने लगी, त्योंही अपने नेत्र-गोलक उसे भेंट करते हुए साधु बोला—"माता! माता! इन नयनों को ले लीजिए, क्योंकि इन्होंने तुम्हें मोहित किया था और तुम्हें बड़ा कष्ट दिया था। इन नेत्रों को अपने पास रखने का तुम्हें पूरा अधिकार है। माँ! तुम्हें इन नयनों की चाह थी। इन्हें लो, अपने पास रखो इनको, इन्हें प्यार करो और इनका सुख भोगो, इन नेत्र-गोलकों का तुम जो चाहो सो करो; किन्तु ईश्वर के लिए, दया करके, मेरी अग्रसर गति को, मेरी आध्यात्मिक उन्नति को न रोको। सत्य के मार्ग से ठोकर मारकर मुझे नीचे गिराने की व्यवस्था न करो।"

अरे भाइयो! यहाँ हम देख सकते हैं कि यदि तुम्हारी आँखें तुम्हारी राह में रोड़ा हैं तो उन्हें कैसे निकाल-फेंकना चाहिए। तुम्हारा सारा जीवन अँधेरे में नष्ट हो जाने से यह अच्छा है कि तुम्हारी देह बिना प्रकाश के ही रहे, यही सच्चा मार्ग या साधन है।

यदि तुम्हारे नेत्र तुम्हारे सत्यानुभव के मार्ग में रोड़े हों, तो उन्हें छेदकर निकाल डालो। यदि तुम्हारे कान तुम्हें फुसलाते और पीछे घसीटते हैं, तो उन्हें काट डालो। यदि तुम्हारी स्त्री, श्री-सम्पत्ति, धन-दौलत या कोई भी चीज़ तुम्हारे सन्मार्ग में विघ्न करती है, तो उसे दूर कर दो। यदि सत्य को तुम उतना ही प्यार कर सको, जितना कि अपनी घरवाली स्त्री अथवा नातेदारों को प्यार करते हो; यदि तुम परमेश्वर, आत्मा या आत्मानुभव को उतनी ही लग्न और रुचि के साथ प्यार कर सको, जितने जोश और उत्साह से अपनी स्त्री को प्यार करते हो; अपनी स्त्री पर जितना प्रेम दिखलाते हो यदि उसका आधा भी तुम परमेश्वर को प्यार कर सको तो इसी क्षण तुम्हें सत्य की प्राप्ति हो जाय। जब धर्म-पथ पर चलना आरम्भ करते हो और प्रारम्भ में मिलने वाले प्रलोभनों पर विजय प्राप्त कर लेते हो, तब तुम्हें परमेश्वर का अनुभव होने लगता है। प्रारंभिक प्रलोभनों पर विजय पाने पर तुम्हें क्या मालूम होगा? तब तुम्हें यह रास्ता पहले जैसा ऊटपटांग और सौन्दर्यहीन न जान पड़ेगा, क्योंकि यह सारा मार्ग बीहड़ नहीं है। कहा जाता है कि सत्य का मार्ग सुई के नाके से भी अधिक तंग है। वेदों में लिखा हुआ है कि सत्य का पन्थ छुरे के धार के समान पैना और संकीर्ण है। किन्तु यह सम्पूर्ण सत्य नहीं है। प्रारंभ में पंथ बहुत पैना और संकीर्ण जान पड़ता है, किन्तु जब आप साधारण प्रलोभनों को जीत लेंगे, तब आगे अत्यन्त सुन्दर और सुखप्रद-मार्ग आपको मिलेगा। आप सम्सूर्ण प्रकृति को अपनी सहायता करते और प्रत्येक वस्तु को अपना पक्ष लेते हुए पावेंगे। ये कठिनाइयाँ, ये प्रलोभन, ये रुकावटें, ये प्रयत्न और ये विरोध केवल आपको डराने का यत्न करते हैं। ये आपको डराते और धमकाते हैं। किन्तु वास्तव में हानि नहीं पहुँचाते। यदि तुम उनसे आँखें लड़ाकर उनकी आँखें नीची कर सको, उन्हें भयभीत कर सको, तो तुम्हें मालूम होगा कि ये कठिनाइयाँ केवल देखने मात्र की कठिनाइयाँ थीं, कठिनाइयाँ

और प्रलोभन केवल मालूम होने भर की कठिनाइयाँ और प्रलोभन थे। वरंच आप संपूर्ण प्रकृति को अपनी ओर खड़ा हुआ पायेंगे, समग्र सृष्टि को अपनी टहल करने को तैयार पायेंगे। तब आप को यह पता लग जायगा।

एक हिन्दू धर्म-पुस्तक में जो भारत की इलियड (प्रसिद्ध धर्म-युद्ध पुस्तक) है, और जिसमें संसार के अथवा अन्ततः भारत के सर्वश्रेष्ठ शूर-वीर राम की कथा वर्णित है, कहा हुआ है कि जब वे सत्य को खोजने गये, सत्य के पुनर्लाभ या अनुसन्धान के लिए गये, तब सम्पूर्ण प्रकृति ने अपनी सेवायें उनके अर्पण कर दीं। कहा जाता है कि बन्दर उनके सैनिक बने और गिलहरियों ने खाड़ी पर पुल बनाने में उनकी सहायता की। कहा गया है कि पक्षियों (जटायु) ने भी उनका पक्ष लेकर शत्रु पर विजय पाने में उनकी सहायता की। कहते हैं कि पत्थर अपने स्वभाव को भूल गये। पानी में फेंके जाने पर डूबने के बदले पत्थरों ने कहा—"हम इसलिए पानी पर तैरते रहेंगे, ताकि सत्य के पक्ष की विजय हो।" उसमें यह कहा गया है कि वायु और आकाश राम के पक्ष में थे, अग्नि भी इनकी सहायक रही। पवन और तूफान ने भी उनका साथ दिया। अँग्रेज़ी भाषा में एक कहावत है कि वायु और लहरें सदा वीर के अनुकूल रहती हैं। समग्र प्रकृति उसी समय आप का पक्ष लेने लगती हैं, जब आप निरन्तर प्रयत्न में लगे ही रहते हैं, जब आप प्रारम्भिक दिखावटी कठिनाइयों को जीत लेते हैं। शुरू के प्रलोभनों और झगड़ों को यदि आप जीत लें तो समग्र प्रकृति को आप की चेरी बनना पड़ेगा। सत्य पर डटे रहने का आग्रह करो तो तुम्हें विदित होगा कि तुम किसी साधारण लोक में नहीं रहते हो। दुनिया तुम्हारे लिए अद्भुत चमत्कारों की दुनिया बन जायगी, तुम्हारे चारों ओर अलौकिक घटनायें घटेंगी और धिक्कार उन देवताओं को जो तुम्हारी आध्यात्मिक उन्नति में तुम्हारी ख़िदमत न करें। प्रकृति उत्सुकता के साथ विश्व के

शासक की मुसाहबी कर रही है। आप अखिल विश्व के स्वामी हैं; यदि सत्य के साथ आप डटे हुए हैं, तो आप समग्र संसार के अधिपति हैं।

राम के विचार से जो संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुषों में से एक है, उस आर्य महात्मा की जीवनी वर्णन करके राम इस व्याख्यान को समाप्त करेगा। उसका नाम है शम्सतबरेज़। एक विचित्र परिस्थिति में इस मनुष्य का जन्म हुआ था। कहानी सच है या झूठी, इससे हमें कोई मतलब नहीं। किन्तु कुछ-न-कुछ सत्य उसमें अवश्य होगा। उसके पिता के सम्बन्ध में कहा गया है कि एक समय वह अपने देश में बड़ा ही निर्धन मनुष्य था। उस दीन-हीन व्यक्ति ने अपना जीवन पूरी तरह से ईश्वर-ध्यान में विताया था। वह भूल गया था कि उसका शरीर कभी जन्मा है, वह बिलकुल भूल गया था कि उसकी देह कभी इस लोक में थी भी। उसके लिए दुनिया कभी दुनिया थी ही नहीं। वह परमेश्वर था, पूर्ण ब्रह्म था और जिस तरह कभी-कभी किसी व्यक्ति की सारी देह किसी एक ख़याल से परिपूर्ण हो जाती है, एक ध्यान में पग जाती है, उसी तरह नख से शिखा तक उसकी देह का प्रत्येक रोम कूप ब्रह्मज्ञान से पूर्ण सचेतन हो गया था। कहा गया है कि जब वह सड़कों पर चलता था, तब लोग उसके शरीर के रोमकूपों से यह गीत सुनते थे—"हक़, अनलहक़", जिसका अर्थ है—"ब्रह्म, अहम् ब्रह्मास्मि।" उसकी जीभ पर सदा यह गीत रहता था—"अनलहक़, अनलहक़, ब्रह्म मैं हूँ; ब्रह्म मैं हूँ।" साधारण दुनिया के लोग उसके आस-पास जमा हो गये, उन्होंने उसे मार डालना चाहा। उन्होंने उस पर धर्मद्रोह (कुफ्र) का अभियोग लगाया। वह अपने को ब्रह्म क्यों कहता है? किन्तु वह स्वयं ब्रह्म था, उसके लिए देह देह नहीं थी, न दुनिया दुनिया थी। "अनलहक़" शब्द जब उसके मुख से निकलते थे, तब उसे उनका भी ध्यान नहीं होता था। जिस तरह सोया हुआ मनुष्य खर्राटे लेता है, उसी तरह अपनी दृष्टि से

वह बिलकुल परमेश्वर में डूबा हुआ था। और यदि "अनलहक़" शब्द उसके मुख से निकलते थे, तो वे सोये हुए मनुष्य के ख़र्राटे जैसे थे। लोगों ने उसे मार डालना चाहा पर उसके लिए मरना-जीना कैसा ? वह शरीर तो था नहीं, तब तुम किसे मारोगे ? तुम तो शरीर का बध करोगे, किन्तु उसकी अपनी दृष्टि में तो उस शरीर का कभी अस्तित्व था ही नहीं। उसके शरीर को मार डालो, किन्तु उसको इससे कौन पीड़ा हो सकती थी ? कहा गया है कि उसका शरीर सूली पर चढ़ाया गया। आप जानते हैं कि सलीब पर देह रखना एक सहज बात है, किन्तु वहाँ सलीब से भी एक बदतर चीज थी। यह एक लोहे की लम्बी छड़ थी जो सिरे की तरफ सुई की सी नोकदार थी। इस मनुष्य का हृदय लोहे की इस छड़ के ठीक सिरे पर रख दिया गया। लोहे की छड़ के पैने नुकीले सिरे को उसकी सौर अथवा हृदय-चक्र को छेद कर पार निकलना था। उन दिनों इसी तरह पर मनुष्य मारे जाते थे। आप समझ सकते हैं कि यह सलीब से भी बुरा ढंग है। उस की देह इसी तरह की सूली पर रखी गई। लोग कहते हैं कि जब उस की देह उस सूली पर रखी हुई थी, तब भी उसका चेहरा तेज से दमक रहा था, उसके शरीर के रोम-रोम से वही मधुर गीत निरन्तर निकल रहा था—"अनलहक़, अहम् ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूँ, परब्रह्म मैं हूँ, परब्रह्म मैं हूँ।" शरीर मृत्यु को प्राप्त हो गया है, किन्तु उसके लिए इससे क्या अन्तर पड़ सकता था ? इस कथा से आप समझ सकते हैं कि यदि सत्य के लिए आप को अपनी देह दे देना पड़े, तो दे डालिए। यह अन्तिम आसक्ति, अन्तिम बन्धन भी तोड़ डालिए। सत्य के लिए, सांसारिक आसक्तियों, अनुरागों को दे देने की तो बात ही क्या है, सत्य के लिए आपको केवल सांसारिक आसक्तियों को ही नहीं छिन्न-भिन्न करना पड़ेगा, किन्तु यदि शरीर देने की ज़रूरत पड़े, तो उसे भी दे देना होगा। इसी तरह पर आप सत्य के पथ पर चल कते हैं। जब ये मनुष्य उस नुकीली छड़ पर लटक रहा था

तब ख़ून की कुछ बूंदें उसकी देह से नीचे टपक रही थीं। कहानी बताती है कि लोहू के उन क़तरों को एक युवती ने बटोर लिया। यह जवान लड़की, उसी साधु का सा ही विश्वास रखती थी, इस नौजवान लड़की के भी वैसे ही विचार थे जैसे प्रचारक के थे; उसने इस जमा किये हुए रक्त को पी लिया। लोग कहते हैं कि उसके गर्भ रह गया। बात सच हो या झूठ, इससे हमारा विशेष मतलब नहीं। यदि मसीह निष्कलंक गर्भ से उत्पन्न हो सकता है, तो वेदान्त के अनुसार यह बात भी सत्य हो सकती है, क्योंकि यह एक ऐसा मनुष्य था जो ईसामसीह से कम नहीं था, यथार्थ में अनेक बातों में वह उससे बढ़ा हुआ था। इस युवती के एक लड़का उत्पन्न हुआ जो साधु हुआ; उसीकी जीवनी राम आपको सुनाना चाहता है। अपने प्रारम्भ से ही, अपने बचपन से ही वह पूर्ण परमेश्वर था, वह अपने बाप से भी कहीं बढ़-चढ़ कर था। आप विश्वास करें, उसकी जिह्वा से निकली हुई एक अति अपूर्व पुस्तक, एक बहुत बड़ा सद्ग्रन्थ है। इस महापुरुष ने कभी क़लम उठाकर उसे नहीं लिखा। कहा जाता है कि उसके मुख से सदा कविता ही निकलती थी, वह जो कुछ भी बोलता था, काव्यमय ही होता था। किन्तु किस तरह का काव्य? तुम्हारे अमेरिकन कवियों का अधम काव्य नहीं। यह यथार्थ में वास्तविक काव्य होता था। ब्रह्मज्ञान के सिवाय और कुछ भी इसमें नहीं था। दिव्य कल्पनाओं से अलंकृत यह अति उत्कृष्ट काव्य बन जाता था। इसका एक-एक शब्द सोने से तौले जाने के योग्य है, यदि उसकी तौल की जा सकती है तो—

इसी मनुष्य के सम्बन्ध में एक बड़ी ही विचित्र बात कही जाती है। एक बार तमाशा करने वाले लोगों की एक मण्डली आई, आप सरकस या किसी दूसरी तरह का तमाशा समझ लीजिए। बादशाह को उन्होंने तमाशा दिखाया। बादशाह उनसे बहुत ख़ुश हुआ और एक हज़ार रुपये इनाम दिये। बाद में बादशाह को बड़ा पश्चाताप हुआ।

निस्सार तमाशों के लिए रोज़-रोज़ हज़ारों रुपये दे डालना महाराज को उचित नहीं जँचा। अपने हज़ार रुपये फेर लेने के लिए उसने एक चाल चली। उसने तमाशे वाले से सिंह का वेश धारण करने के लिए कहा—इस शर्त पर कि यदि शेर का खेल पसन्द आ जायगा तो तुम्हें कोई बड़ी भारी चीज़ इनाम दी जायगी, नहीं तो तुम्हारी सम्पत्ति सब जुर्माने में ले ली जायगी। ये लोग शेर का तमाशा न कर सकते थे। ये शेर का रूप या वेश बनाकर बादशाह को खुश न कर सकते थे। देखिये—हिन्दुस्तान में ऐसे लोग हैं जो सब तरह के रूप बनाते हैं और कुछ जानवरों के रूपों में भी प्रकट होते हैं। जिन जानवरों का वेष वे धारण करते हैं उन्हीं का प्रतिरूप वे सब तरह पर हो जाते हैं। किंतु शेर का वेष धारण करना कोई आसान बात न थी। ये लोग इस साधु पुरुष के पास पहुँचे और आँसू बहाकर रोने धोने लगे। कथा कहती है कि सम्पूर्ण सृष्टि से तदात्म होने के कारण, समग्र प्रकृति से एक और प्रत्येक से अभेद होने के कारण स्वाभाविक सहानुभूति से इस महापुरुष का हृदय द्रवीभूत हो गया। और एकदम उसने उन लोगों से कहा कि तुम खुश हो जाओ। मैं सिंह का वेष धारण करूंगा, मैं स्वयं शेर का खेल दिखाऊंगा।

आगे कथा यों है कि दूसरे दिन जब बादशाह और उसके दरबारी सब के सब इस प्रतीक्षा में खड़े हुए थे कि तमाशा करने वाली मण्डली का कोई आदमी सिंह की आकृति और रूप बनाकर आता है या नहीं, तब एकाएक, मानो जादू के ज़ोर से, एक सच्चा शेर आँगन में कूद पड़ा। यह सिंह तुरन्त गरजने लगा। इसने बादशाह के बच्चे को झपट लिया और टुकड़े-टुकड़े करके चीर डाला। उसने एक दूसरे लड़के को उठा लिया और उसे भी आकाश में उछाल दिया। आप देखें कि यह उस मनुष्य का काम था जो वास्तव में परब्रह्म और परम-आत्मा था। इस व्यक्ति के लिए मैं "यह छोटा-सा नन्हा शरीर हूँ।" यह कल्पना अतीत काल की बात हो चुकी थी। इन शब्दों का उसके लिए

कोई मूल्य ही न था। वह स्वयं परमब्रह्म था। वह वही परमेश्वर था जो सिंह के रूप में, सारे चराचर ब्रह्माण्ड के रूप में प्रकट हो रहा है। उसके एक क्षण के विचार ने उसे शेर बना दिया। जैसा तुम सोचते हो, वैसे ही तुम हो जाते हो और यदि तुम अपने आत्म स्वरूप को परमात्मा समझो और अनुभव करो, तो आप के सब विचार और मनोरथ अवश्य सफल होंगे, उसी क्षण पूरे होंगे। इसलिये इस पुरुष का विचार कि मैं सिंह बन सकता हूँ, तुरन्त सफल हुआ और वह सिंह हो गया। तमाशा समाप्त हुआ। लड़के को मारकर महात्मा चला गया। वास्तव में उसे शेर का स्वाङ्ग करने वा न करने से कोई सरोकार न था और न वह इस देह या उस देह का आदर ही कर सकता था। वह व्यक्तियों को माननेवाला नहीं था। दूसरे शब्दों में उसमें देह-बुद्धि का नामोनिशान भी न था। किन्तु बादशाह जामे के बाहर हो गया। बादशाह और उसके दरबारी महाकोप की मूर्ति बन गये। उन्होंने इस पुरुष से बदला लेना चाहा। वे उसके पास गये और बोले--"ओ महाराज! ओ महाराज!! कृपा करके इस लड़के को फिर जिला दीजिए। यदि आप उसे मार सकते हैं, तो जिला भी सकते हैं। उसे जीवित कीजिये, जिस तरह ईसा "कुम व यज़्न अल्लः" कह कर मुर्दों को जीवित करता था, उसी तरह आप ईश्वर के नाम पर उसे जीवित कर दें। 'कुम ब यज़्न अल्लः' का अर्थ है--"ईश्वर के नाम से उठ खड़े हो, ईश्वर की महिमा बखानो और जी उठो, पुनर्जीवित हो जाओ।" उन्होंने महात्मा से उस लड़के को ईश्वर के नाम पर फिर जिला देने के लिए कहा। महात्मा हँसे और बोले--"ईश्वर के नाम से फिर जी जाओ।" किन्तु लड़का चैतन्य न हुआ। महात्मा ने कहा--"लड़का ईश्वर के नाम पर सजीव नहीं होता है।" उसने फिर कहा--"ईश्वर के लिए जी जाओ।" अब भी लड़का न जिया। महात्मा ने तीसरी बार फिर कहा--"जी जाओ और प्रभु के नाम से उठो और चलो।" किन्तु वह जीवित न हुआ। महात्मा

मुस्कराया और बोला—"कुम ब यज़्नी", "मेरी आज्ञा से जी जाओ, मेरे आदेश से जी उठो।" अब तो लड़का जी उठा। "कुम ब यज़्नी", यह अंतिम सत्य है। "मेरे आदेश से जी उठो।" महात्मा का यह आदेश सुनते ही लड़का पूर्णरूप से चङ्गा हो गया, सजीव हो गया। लड़का तो जी उठा, किन्तु लोगों को महात्मा की यह बात अच्छी न लगी। उन्होंने कहा—"यह महात्मा नहीं, धर्म-द्रोही, काफ़िर है। यह सम्पूर्ण कीर्ति खुद ही लेना चाहता है, यह अपने को ईश्वर के बराबर बनाना चाहता है। इसे मार डालना चाहिए, इसका बध हो जाना चाहिए, जीते जी इसकी खाल उतार लेनी चाहिए।" महात्मा के लिए ये बातें अर्थरहित थीं। लोग उसे नहीं समझे थे। वह देह को, क्षुद्र व्यक्तित्व को परमेश्वर नहीं कह रहा था। वह तो अपनी हाड़-मांस युक्त देह को इसके पहले ही सूली पर चढ़ा चुका था। यहाँ लोग जीते जी उसकी खाल उतार लेना चाहते थे।

कहानी आगे कहती है कि उस महात्मा ने तुरन्त अपने नखों को अपने सिरसे लगाया और जिस तरह जानवरों की खाल उतार कर देह से अलग कर दी जाती है, उसी तरह अपने ही नखों से महात्मा ने अपनी खाल उतार डाली और काट कर फेंक दी। इसी अवसर पर रची हुई उसकी एक बड़ी उत्कृष्ट कविता है। उस गीत का मर्म यह है—"ऐ आत्मा! ऐ मेरे अपने आप!" वह अपने को सम्बोधन कर रहा है, "जिसके लिए संसार का विष अमृत है और ऐ आत्मा मेरे अपने आप! जिसके लिए संसार का अमृत (इन्द्रियों का भोग) विष है, उससे ये लोग कुछ चाहते हैं। संसार मुरदार है (यहाँ मुरदार का अर्थ इन्द्रियों का भोग है), इसके अतिरिक्त कुछ और नहीं। दुनिया के सुख केवल निर्जीव शव जैसे हैं, उनके सिवा कुछ और नहीं, उन्हीं के पीछे जो दौड़ते हैं, वे कुत्तों से किसी तरह बेहतर नहीं। यहाँ ये कुत्ते आये हुए हैं; इन्हें ये मुरदार गोश्त खाने को दे दो।" कहानी चाहे सच्ची हो या झूठी, राम को

इससे कोई प्रयोजन नहीं। किन्तु कहानी का तत्व, कहानी की शिक्षा, तुम्हें अपने मन में रखना चाहिए।

सत्य की प्राप्ति के लिए धर्म के रास्ते पर चलने के लिए, सारे अनुरागों को त्याग दो। सांसारिक कामनाओं और स्वार्थपूर्ण आसक्तियों से ऊपर उठो। यदि लौकिक आसक्तियों और स्वार्थमयी इच्छाओं से आप अपने को आज़ाद कर लें, तो फिर सत्य पाने की बात ही क्या है? आप स्वयं इसी क्षण सत्य हैं। "मुझे अधिक प्रकाश चाहिए और अधिक प्रकाश चाहिए।" यह मूर्खों की प्रार्थना है। तुम्हें ऐसी प्रार्थना करने की ज़रूरत नहीं। प्रकाश को बुलाने के लिए आपको ऐसी एक भी प्रार्थना की ज़रूरत नहीं है, यदि आप अपने को इसी पल अभिलाषाओं से शून्य कर लें, यदि आप अपने को सारे सांसारिक मोहमाया एवं आसक्तियों से स्वतन्त्र कर लें तो आपका बेड़ा पार है। आप समझ लें कि आपकी प्रत्येक इच्छा या कामना आपका एक भाग कतर लेती है, आपको अपने आप का एक छोटा अपूर्णांक बनाकर छोड़ जाती है। पूर्ण मनुष्य का दर्शन हमारे लिए कितना दुर्लभ है! पूर्ण मनुष्य तो अनुभवी पुरुष है, पूर्ण मनुष्य सत्य स्वरूप है। प्रत्येक अभिलाषा या कामना आपको अपनी ही समभिन्न (कसर वाजिब) नहीं, किन्तु अपनी ही विषम भिन्न (कसर ग़ैर वाजिब) बना डालती है। दुसरे शब्दों में कामना आपको अपने आपका एक तुच्छ भाग बना देती है और ज्यों-ज्यों कामनायें बढ़ती जाती हैं, त्यों-त्यों आप तुच्छ होते जाते हैं। जैसे किसी अंक के नीचे हर में कुछ न रहने से वह पूर्ण होता है, उसी प्रकार आप पूर्ण हैं। किन्तु ज्यों-ज्यों हर में वृद्धि होती जाती है, त्यों-त्यों वह पूर्णांक छोटा एवं तुच्छ होता जाता है। ज्योंही इन अभिलाषाओं, लगनों, स्नेहों, द्वेषों, आसक्तियों और अनुरागों को आप दूर हटा दें, प्रकाश पाने की इच्छा को भी त्याग दें, अपने आप को राग-द्वेष से छुड़ाकर अचल स्थिरता प्राप्त करें, और एक क्षण के लिए ॐ की रट

लगायें, जब आपके मन की कोई भी वृत्ति, किसी भी व्यक्ति, किसी भी देह या किसी भी पदार्थ में न रह जाय, जब आपका यह कामना-भाग, जो आप विभिन्न पदार्थों और इच्छा के पास छोड़ चुके हैं बिलकुल लोप हो जाय, त्योंही आप शान्त होकर बैठें, ॐ रटें और विचारें कि आपके अन्दर कौन है ? क्या वह आप का अपना आप नहीं है, जो आपके बालों को बढ़ाता है और आपकी नाड़ियों में ख़ून बहाता है ? क्या वह आपका अपना आप, आत्मा नहीं है, जिसने इस शरीर को रचा है ? यह विचित्र दुनिया भी क्या आप ही के हाथ की कारीगरी नहीं है। निस्सन्देह यह आपकी अपनी ही सृष्टि है। यह समझ लो, यह ख़ूब हृदयङ्गम कर लो। आपके द्वारा सुनने वाला कौन है ? क्या आप ख़ुद ही नहीं हैं ? वह कौन है जो आपके द्वारा देखता है ? क्या आप ख़ुद ही नहीं हैं ? आपकी नाड़ियों में खून दौड़ानेवाला कौन है ? क्या आप स्वयं नहीं हैं ? यदि आपका वह अपना आप आत्मा ऐसे अपूर्व काम कर सकता है, तो क्या यह दुनिया भी आप ही की रचना नहीं है। ऐसा समझो और अपने आत्मदेव में आनन्द मनाओ और अपने भीतर से उस आनन्द को प्राप्त करो, अपने निजात्मा ही का सुख लूटो। सर्व-साधारण और असाधारण कामनाओं और अभिलाषाओं को दूर फेंक दो। ॐ, ॐ रटो। यदि कुछ पल भी आप ऐसा करें, तो सिर से पैर तक आपका सारा अस्तित्व ज्योतिर्मय हो जायगा। जब आप स्वयं ही प्रकाश हैं, तो प्रकाश के लिए प्रार्थना क्यों ? आप तुरन्त प्रकाश हो सकते हैं। अपने को पूर्ण बनाइए, कामनाओं और अनुरागों से छुटकारा पाइये, इस राग-द्वेष से पीछा छुड़ाइए। संसार में आसक्ति ही आपको अपने स्वरुप से अलग करती है। जब आप घर पहुंचें तब विचार करें कि किस चीज़ में आपका चित्त लगा हुआ है। यदि आप नाम या यश की चाह में आसक्त हैं तो उसे दूर कर दीजिए। यदि लोकप्रियता की इच्छा के मोहजाल में आप उलझे हुए हैं तो उससे अपने को विरक्त कर लीजिये। यदि

संसार का हित करने की आकांक्षा और अभिलाषा में आपका अनुराग है तो उसे भी त्याग दीजिये। यह एक ग़ैर-मामूली-सी बात मालूम होती है, किन्तु दुनिया इतनी दीन-हीन क्यों हो कि वह हर घड़ी आपकी सहायता माँगती रहे।

राम कहता है **कि आप अपना कर्त्तव्य या काम कीजिये पर उसके लिए न तो कोई चिन्ता हो और न इच्छा। अपने काम को करो,** अपने **काम में सुख अनुभव करो, क्योंकि आपका काम स्वयं सुख या विश्राम है, क्योंकि आपका काम आत्मानुभव का ही दूसरा नाम है।** अपने काम में लगे रहिये, क्योंकि काम आपको करना ही है। काम आपको आत्मानुभव कराता है। किसी दूसरे हेतु से काम न कीजिये। स्वतंत्र वृत्ति से अपने काम पर आइए—जैसे एक राजकुमार मनोरंजन के लिए फुटबाल या दूसरा कोई खेल खेलने जाता है, वैसे ही आप अपने काम पर आइये, क्योंकि सुख या आनन्द, कर्म के रूप में रहता है। हम अपने को स्वतंत्र समझें, न कि किसी भी चीज़ की क़ैद में।

लोग कहते हैं—'कर्त्तव्य', 'कर्त्तव्य', 'कर्त्तव्य' किन्तु 'कर्त्तव्य' तुम्हारा स्वामी क्यों बने! किसी के प्रति भी अपने को उत्तरदायी मत समझो। आप स्वयं अपने प्रभु हैं। किसी डर को अपने पास मत फटकने दो। राम कहता है कि तुम्हें काम करना होगा, किन्तु यदि तुम कोई दूसरा काम कर रहे हो, जिसे तुमने धार्मिक मान लिया है, जिसे तुमने पवित्र और पुण्य कर्म बना लिया है, और तुम उसमें लगे हुए हो, तो बहुत अच्छा है। जब तुम्हारे हाथ किसी कार्य में नियुक्त नहीं हैं, जब तुम्हारे हाथ खाली हैं, और तुम अपने कमरे में बैठे हुए हो, तब अपने प्रभुत्व का आनन्द लूटो, अपने आत्मानन्द का स्वाद चखो। वह सर्वश्रेष्ठ काम है, वहाँ अपने कमरे में, अपने हृदय के सब अनुरागों को दूर कर दो। लोग कहते हैं—"मोह या अनुराग ज़रूरी है, हमसे काम कराने के लिए हेतुओं का होना आवश्यक है।" यह एक मिथ्या कल्पना है। सब

मोहों और आसक्तियों को त्याग दीजिए, अपने को सब कमनाओं से मुक्त कर लीजिये, तुरन्त ही तुम अपने को स्वाधीन पाओगे। तुरन्त ही तुम अपने कंधों पर कोई ज़िम्मेदारी या भार लदा हुआ न देखोगे। तुम्हारे कंधों पर जो बोझ है, उन्हें तुमने स्वयं लादा है। तुम्हारे बोझ को उतरवाने के लिए किसी के भी आने की ज़रूरत नहीं है। जब तुम अपने कंधों पर कोई भार नहीं पाते हो, जब तुम अपने प्रिय पदार्थों को अपने आप ही में पाते हो, जब तुम इस वेदान्त के तत्व को बर्ताव में लाते हो, तब अपने आप, आपका सारा अस्तित्व प्रकाशरूप हो जाता है। स्वयं प्रकाशों के प्रकाश होते हुए, किससे तुमको प्रकाश के लिए प्रार्थना करनी होगी? किसी से नहीं, यही रहस्य है। तुम स्वाधीन हो जाओ। तुम को कौन बाँधता है? तुम्हें ग़ुलाम बनानेवाला है कौन? तुम्हारी अपनी कामनायें, दुसरा कोई नहीं। संसार की समस्त आकर्षण-शक्ति के, संसार की सकल शक्तियों के स्रोत तुम ही हो। दुनिया के अपूर्व से अपूर्व चमत्कार तुम्हारे अधमाधम ग़ुलामों से अधिक नहीं। इन वासनाओं से पिंड छुड़ा लो, तो उसी दम तुम स्वाधीन हो जाओगे और जब सब कामनाओं से तुम छूट जाओगे, तब कौन-सी परमानन्द ऐसा है, जो तुम्हें न प्राप्त होगा? कोई जिम्मेदारी नहीं, कोई भय नहीं।

अच्छा, तुम्हें डर क्यों होता है? केवल इस लिए कि तुम्हें आशंका रहती है कि कहीं अमुक चीज़ जाती न रहे, तुम इस मनुष्य से डरते हो, उस मनुष्य से डरते हो, तुम्हें हँसी का डर है, क्योंकि तुम्हें यश की अभिलाषा है, तुम कीर्ति में आसक्त हो। समस्त भय और चिन्तायें, इच्छाओं का परिणाम है। सिर दर्द, इच्छाओं के नतीजे हैं। राष्ट्रपति या सम्राट के सामने तुम साष्टांग प्रणाम करते और दबक जाते हो, क्यों? केवल इसलिए कि तुम्हें उनकी कृपा-दृष्टि की चाह है। इच्छाओं से मुक्त होने पर, एक-एक करके इन इच्छाओं को दूर कर देने पर तुम प्रभुओं के प्रभु और बादशाहों के बादशाह हो जाते हो। उस समय तुम कितने स्वाधीन और स्वतन्त्र होते

हो ! इसलिए राम कहता है कि सत्य का मार्ग कोई ऐसी चीज नहीं है, जिसे तुम्हें पाना या पूरा करना है । तुम्हें अपने उद्योगों और प्रयत्नों से केवल उस सम्बन्ध और गुलामी को काटना है, जिसकी रचना तुमने अपनी ही इच्छाओं के द्वारा पहले से कर रक्खी है ।

ॐ ! ॐ !!

सांसारिक सुख तो पोस्ते के फूलों के समान हैं,
जो कि हाथ में आते ही बिखर जाते हैं ।
या नदी पर बरफ गिरने के तुल्य हैं,
जिसकी सफ़ेदी क्षण भर रह कर, सदा के लिए लुप्त हो जाती है ।
या उदीची *तेजस के समान हैं,
जिनका वेग दृष्टि की चपलता को भी पछाड़ देता है ।
या इन्द्र धनुष्य के मनोहर रूपों के तुल्य हैं,
जो तूफान के आते ही विलीन हो जाते हैं ।

---

*उत्तरीय तथा दक्षिणीय ध्रुव पर गगनमण्डल में थोड़े-थोड़े समय पर एक विस्तृत प्रकाश दिखाई दे जाता है, जो बड़े वेग से भागता रहता है । उसकी दौड़ की तेजी के कारण दृष्टि उसका पीछा नहीं कर सकती है, इसे अंग्रेजी में 'बोरिअलिश रेश' कहते हैं ।

———

२

धर्म का लक्ष्य

[शनिवार, ६ दिसम्बर, १९०२ को हर्मिटिक ब्राद्ररहुड हाल, सैन फ्रांसिस्को, अमेरिका में दिया हुआ व्याख्यान]

मेरे भिन्नाकार रूपो, मेरे अन्य स्वरूपो !

अब कुछ क्रमबद्ध व्याख्यान दिये जायँगे । आज का विषय उनकी प्रस्तावना समझी जाय । "धर्म का लक्ष्य क्या है और हिन्दू उसे प्राप्त करने के लिए क्या प्रयत्न करते हैं ?"

हिन्दुओं के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति ब्रह्म है, बहुमूल्य रत्न, समस्त धन है, परमानन्द है और सर्व सुखों का स्रोत है । प्रत्येक व्यक्ति स्वयं ब्रह्म है और सब कुछ है । प्रश्न होता है यदि ऐसा है, तो लोग कष्ट क्यों पाते हैं ? वे इसलिये कष्ट पाते हैं कि उनके पास उपाय अथवा युक्ति नहीं है, इसलिये नहीं कि उनके भीतर अनन्त आनन्द का भंडार नहीं है, न यही कारण है कि उनके अन्दर अमूल्य रत्न नहीं हैं; वरन् कारण यह है कि वे उस गांठ को खोलना नहीं जानते, जिसके भीतर यह अमूल्य रत्न धरा है, उस पेटी को खोलना नहीं जानते, जिसमें यह (रत्न) भरा है । दूसरे शब्दों में लोग अपनी ही आत्माओं में प्रवेश करना और अपने ही आत्मा का साक्षात्कार करने का उपाय नहीं जानते । सभी धर्म स्वयं अपना अनावरण और अपने आप को प्रकाशित करने के प्रयत्नमात्र हैं ।

हमारे भीतर अमूल्य रत्न है, उस पर हमने अपने ही हाथों से, अपने ही उद्योगों से परदा डाल रखा है, और अपने आपको दुखी, दीन, अभागा मान लिया है, जैसा कि इमर्सन ने कहा है—"प्रत्येक मनुष्य वास्तव में ईश्वर है, पर मूर्खों जैसा अनुभव कर रहा है।"

जो पर्दा हमारे नयनों पर पड़ा हुआ है, केवल उसको हटाने और उच्छेदन करने के विभिन्न उद्यमों का नाम ही सम्प्रदाय या मत है। कुछ मत इस पर्दे को बहुत महीन करने में अपेक्षाकृत अधिक सफल हुए हैं; किन्तु सब मतों में शुद्ध-वृत्ति और सच्ची भावनावाले लोग होते हैं, और जहाँ कहीं शुद्ध-वृत्ति या सच्ची भावना आती है, वहाँ उतने समय के लिए पर्दा मोटा हो या महीन, परे हट जाता है, और आत्मतत्त्व की एक झलक दिखाई पड़ जाती है। इसका दृष्टान्त इस उदाहरण से दिया जायगा। यह एक पर्दा या घूंघट है, (इस समय स्वामीजी ने एक रुमाल तह करके अपनी आँखों के सामने रख लिया) यह आँखों के सामने है। हम पर्दे को हटाकर देख सकते हैं, किन्तु पर्दा फिर आँखों के सामने आ जाता है। दूसरी स्थिति में पर्दा पतला कर लिया जाता है, (इस समय रुमाल की कुछ तहें खोल ली गईं) और ऐसी स्थिति में भी अर्थात् जब बहुत बारीक हो, वह अलग सरकाया जा सकता है; किन्तु वह फिर आँखों के सामने आ जाता है, सदा के लिए वह आँखों से दूर नहीं हो जाता। लो, हम इसे और भी पतला कर लेंगे। इस हालत में भी वह थोड़ी ही देर के लिए हटाया जा सकता है, पर वह फिर आँखों के सामने आ जाता है। हाँ, पर्दा अत्यन्त पतला कर लिये जाने पर, वह चाहे हटाया न जाय, तो भी हमारी दृष्टि को नहीं रोकता। हम उसमें से देख सकते हैं, साथ ही पहले की तरह अब भी हम उसे समय समय पर हटा भी सकते हैं। जब पर्दा बिलकुल ही पतला कर लिया जाता है, तब व्यवहार-दृष्टि से वह पर्दा नहीं रह जाता। उसके होते हुए भी हम परमानन्द का भोग

करते हैं, हम ईश्वर के समीप (रूबरू) हो जाते हैं। नहीं-नहीं, हम स्वयं ईश्वर (ब्रह्म) हो जाते हैं। अब इस संसार की कोई वस्तु हमारे सुख में विघ्नकारी वा विनाशक नहीं हो सकती, कोई भी वस्तु हमारी राह नहीं रोक सकती। अज्ञान (माया) के पर्दे को अत्यन्त-से-अत्यन्त पतला कर देनेवाले और व्यावहारिक जीवन में भी ज्ञानी को आनन्द-दृष्टि का सुख भोगने की योग्यता देनेवाले वेदान्त में दूसरे मतों से यही विशेषता है।

सभी धार्मिक मतों के अनुयायी समय-समय पर परमात्मा से युक्त हो सकते हैं, और उतनी देर के लिए अपने नेत्रों के सामने से पर्दा, वह चाहे महीन हो या मोटा, हटा सकते हैं, जितनी देर तक वे परमेश्वर से युक्त रहते हैं। एक वेदान्ती भी यही कर सकता है, वह आनन्दमय अवस्था में अपने आपको ला सकता है, किन्तु साधारण अवस्था में भी वह उस दिव्य दृष्टि का सुख भोगता है, जिस दिव्य दृष्टि का सुख मोटे पर्देवाले मतों को नहीं मिलता।

इस संसार के सभी मत, जिनमें भारत के मत-मतान्तर भी सम्मिलित हैं, तीन मुख्य भागों में विभक्त किये जा सकते हैं। संस्कृत में इन्हें हम 'तस्यैवाहम्', 'तवैवाहम्' 'त्वमेवाहम्' कहते हैं। पहले 'तस्यैवाहम्' का अर्थ—"मैं उसका हूँ" इस प्रकार के मतों में पर्दे की मोटाई सब से अधिक होती है। धार्मिक मतों की दूसरी दशा है, 'तवैवाहम्', जिसका अर्थ है—"मैं तेरा हूँ।" मतों या सिद्धान्तों की पहली और दूसरी अवस्था का पारस्परिक भेद आपके ध्यान में आ जाना चाहिए। धर्म-मार्ग में पहली प्रकार की प्रवृत्ति का भक्त अथवा उपासक, ईश्वर को अपने से दूर, अलक्ष्य समझता है, और वह परमेश्वर की चर्चा अन्य पुरुष में करता है—"मैं उसका हूँ", मानो ईश्वर अनुपस्थित है। यह धर्म साधना का श्रीगणेश है। यह भाव धर्म के प्रत्येक बालक के लिए माता के दूध के समान है। एक बार इस दूध को बिना पिये मनुष्य

धर्म की राह पर आगे बढ़ने में असमर्थ रहता है । "मैं उसका हूँ" मेरा सर्वस्व प्रभु का है । यदि मनुष्य इसे पूरी तरह से अनुभव कर ले, तो क्या यह भाव कम मधुर है ! वह सवेरे जल्द जागता है और समझता है—"मेरा मालिक मुझे जगाता है ।" अपने दफ्तर के कामों को अपने प्रिय और भक्तवत्सल ईश्वर के आदेश द्वारा प्राप्त समझता है । वह सारा संसार ईश्वर का समझता है । वह अपने घर, अपने सम्बन्धियों अपने मित्रों को ईश्वर का समझता है अथवा ईश्वर की कृपा से अपने को मिले हुए ख्याल करता है । अरे ! क्या इसी भाव से दुनिया सच्चे स्वर्ग में नहीं परिणत हो सकती । क्या संसार स्वर्ग में नहीं बदल सकता । मनुष्य को सच्चा होना चाहिए, उसे उत्सुकता से और दिलोजान से यह समझना तथा अनुभव करना चाहिए कि मेरे आस-पास की हर एक वस्तु मेरे प्रभु की, मेरे ईश्वर की है और यह देह भी उसी की है । यदि यह विचार भी पूरी तरह से अनुभव कर लिया जाय, तो मनुष्य को अपूर्व सुख, अकथनीय हर्ष और परम आनन्द मिल सकता है । यह उत्कृष्ट विचार अनुभव किये जाने पर और अमल में लाये जाने पर यह विचार भी यथेष्ट हो सकता है, मधुर हो सकता है; परन्तु सिद्धान्त की दृष्टि से यह मत प्रारम्भ मात्र है ।

"तवैवाहम्", अर्थात् मैं तेरा हूँ, मुझे हर घड़ी तेरी ज़रूरत है, मैं तेरा हूँ, मैं तेरा हूँ ।" भक्ति वा धार्मिक जीवन की इस दूसरी स्थिति की तुलना पहली स्थिति से कीजिए । पहली कल्पना मधुर थी, किन्तु यह मधुरतर है । पहली दशा बड़ी प्यारी और रुचिकर थी, किन्तु यह और भी अधिक प्यारी, और भी अधिक रुचिर है । ज़रा दोनों के भेद पर ध्यान दीजिये । दृष्टान्त की दृष्टि से अब पर्दा पहले से पतला हो गया है । आप जानते हैं कि "मैं तेरा हूँ"—इस भाव में ईश्वर की चर्चा प्रथम व अन्य पुरुष में नहीं की गई है । वह अब अनुपस्थित, पर्दे की ओट में नहीं माना गया है; किन्तु हमारे आमने-सामने आ गया

है। वह हमारे निकट है और हमें प्यारा है, वह हमारे बहुत समीप है। अब वह पहले से हमारे अधिक नगीच आ जाता है, हमारी उससे अधिक घनिष्टता हो जाती है। सिद्धान्त की दृष्टि से यह विचार उच्चतर है; किन्तु प्रायः ऐसा होता है कि लोग इस मत में विश्वास तो जमा लेते हैं और ईश्वर को अपने अति सुपरिचित, अति समीपस्थ की भाँति सम्बोधन करते हैं, पर वे सच्ची उत्कट वृत्ति और सजीव विश्वास से वंचित रहते हैं।

धार्मिक उन्नति की पहली दशा में भी यदि ज़ीता-जागता विश्वास जम जाये, तो पर्दा बहुत मोटा होते हुए भी कुछ समय के लिए हट जाता है। जब कोई मनुष्य अपने सच्चे हृदय से, अपने रक्त की प्रत्येक बूंद से, इस विचार को प्रत्यक्ष करने लगता है कि वह ईश्वर का है अर्थात् "उसका सर्वस्व उस परमात्मा का है", उसके शरीर के प्रत्येक रोम से मानो यही विचार बहने लगता है, तब सत्यता, उत्कंठिता, उत्साह और उमंग—ये सब क्षण भर के लिए उसकी आँखों के सामने से पर्दा खिसका देते हैं और वह ईश्वर में लीन हो जाता है, ईश्वर में, ब्रह्म-भाव में डूब जाता है, ईश्वर का सच्चा भक्त हो जाता है, उस समय वही परमेश्वर हो जाता है। कभी-कभी "मैं तेरा हूँ"—इस ऊंचे सिद्धान्त में श्रद्धा रखनेवाले मनुष्य में भी उक्त सच्चे जीते-जागते विश्वास का अभाव होता है, अतः वह ईश्वर की समक्षता के मिठास का पूरा पूरा मज़ा नहीं उठा पाता; परन्तु धार्मिक मत की इस दूसरी अवस्था में भी उसे जीते-जागते विश्वास और उत्कट इच्छा का योग किया जा सकता है।

मत का तीसरा प्रकार "त्वमेवाहम्" कहलाता है; जिसका अर्थ है "मैं तू ही हूँ"। आप देखते हैं कि यह हमें ईश्वर के कितने निकट ले आता है। पहले रूप में "मैं उनका हूँ" ईश्वर परे वा दूर है। दूसरे रूप में "मैं तेरा हूँ" ईश्वर से हमारा आमना-सामना होता है, वह हमारा

अधिक नगीची होता है। किन्तु धार्मिक उन्नति की अन्तिम अवस्था में दोनों एक हो जाते हैं। प्रेमी प्रेम में लीन हो जाता है। यही वेदान्त का अनुभव है। पतिंगा प्रकाश की ओर तब तक बढ़ता जाता है, जब तक अपनी देह भस्म करके वह स्वयं प्रकाश-रूप नहीं हो जाता। उपनिषद् (वेदान्त) शब्द के शब्दार्थ हैं, प्रकाशों के प्रकाश के इतने निकट (उप) पहुँचना कि विलग और विभाग करने वाला चेतना-रूप पतिंगा अत्यन्त निश्चय पूर्वक (नि) नष्ट (षद) हो जाय। ईश्वर का सच्चा प्रेमी ईश्वर में मिल जाता है और अनजाने, अनायास, विना इच्छा किये हुए ही बोल उठता है "मैं वह हूँ", "मैं वह हूँ", "मैं वह हूँ", "मैं तू हूँ", "तू और मैं एक हूँ", "मैं ईश्वर हूँ", "मैं ईश्वर हूँ", तुझ में और मुझ में कोई अन्तर नहीं है। धार्मिक उत्कर्ष की यह अन्तिम अवस्था है। यही उच्चतम भक्ति है। यही वेदान्त कहलाता है, जिसका अर्थ है ज्ञान की इतिश्री। समस्त ज्ञान की परिसमाप्ति इसी में होती है, यहाँ हमें अन्तिम ध्येय की प्राप्ति होती है। इस श्रेणी में भी, जिसमें कि पर्दा इतना महीन है कि पर्दे के रहते हुए भी सारी असलियत हम देख सकते हैं, कुछ ऐसे लोग हैं जिनमें उत्कट इच्छा, शुद्धि, एकाग्रता की वृत्ति की कमी होती है और वे अपरोक्ष साक्षात्कार का आनन्द लूटने के लिए पर्दे को सरका नहीं सकते। जो भीतर-बाहर सच्चे हैं, वे बुद्धि से इस निश्चय पर पहुँच जाने के बाद, निदिध्यासन द्वारा इस दर्जे तक इस निश्चय का अनुभव करने लग जाते हैं कि पर्दा हट जाता है और वे दिव्य आनन्द, स्वर्गीय अमृत को भोगने लगते हैं—वे स्वयं ब्रह्म-रूप हो जाते हैं। वे इसी जीवन में मुक्त होकर जीवनमुक्त कहलाते हैं।

मत को विशुद्ध या पर्दे को पतला करने की क्रिया मुख्यतः बुद्धि के द्वारा होती है, और पर्दा मनन वा निदिध्यासन द्वारा उठता है। मत वा सिद्धान्त के तीन रूपों का वर्णन किया जा चुका। अब हमें यह देखना चाहिए कि विभिन्न मतों के लोगों के लिए समय-समय पर कहाँ तक

पर्दे का पलटना सम्भव हुआ है। कुछ हिन्दू कहानियाँ यहाँ दृष्टान्तों का काम देंगी।

एक लड़की अत्यन्त प्रेमासक्त थी। उसकी सारी हस्ती ही प्रेम-रूप हो गई थी। एक बार वह बहुत बीमार पड़ी। वैद्य बुलाये गये। उन्होंने कहा कि इसे अच्छा करने का केवल एक ही उपाय है कि इसका कुछ ख़ून निकाल दिया जाय। उसकी भुजाओं के मांस में उन्होंने नश्तर लगाये। किन्तु आश्चर्य। उसकी देह से ज़रा-सा भी ख़ून नहीं निकला। पर महत् आश्चर्य उसी समय उसके प्रेमी की त्वचा से ख़ून निकलने लगा। दोनों में कैसी अद्भुत एकता थी! तुम इसे दन्त कथा वा झूठी कहानी कहोगे, किन्तु यह बात सत्य हो सकती है। प्रायः वे लोग जो प्रेम का अनुभव करते हैं, चाहे वह नीचे दर्जे के भले ही हों, अपने जीवन से कभी-कभी उक्त घटना-जैसे घटना-वैचित्र्य को सिद्ध करते हैं। अपने जीवन में वह कुमारी अपने व्यक्तित्व को नितान्त भूल गई थी, उसने अपने प्रेमी से अपने आप को एक कर लिया था और प्रेमी ने लड़की के प्यार में अपने आप को पूर्णतः डुबो दिया था।

ईश्वर से ऐसी ही एकता प्राप्त करना धर्म है। **मेरी देह उसकी देह हो जाय और उसका अपना आप मेरा अपना आप हो जाय।**

हिन्दुओं की धर्म-पुस्तक-योगवासिष्ट में, हमें और एक महिला की कथा मिलती है। वह आग में डाल दी गई थी। लोगों ने देखा कि अग्नि ने उसे नहीं जलाया। उसका प्रेमी आग में झोंक दिया गया, किन्तु उसे भी अग्नि ने भस्म नहीं किया। यह क्या बात थी? वे नदी में फेंक दिये गये, किन्तु वहे नहीं। वे पहाड़ों की चोटियों से ढकेले गये, पर एक भी हड्डी टूटी नहीं! यह क्यों कर? उस समय वे इसका कुछ भी कारण न बता सके। वे अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठे हुए थे, वे ऐसी हालत में थे कि उन तक दुनिया का कोई प्रश्न नहीं पहुँच सकता था। बहुत काल के बाद जब उनसे कारण पूछा गया, तो उन्होंने कहा कि हम

दोनों को उस समय एक दूसरे के सिवा कुछ और नहीं दिखाई देता था। हमारा सारा ध्यान एक दूसरे में लगा हुआ था। न हमें अग्नि दिखाई देती थी, और न पवन। हमारे लिए जो कुछ था, वह था हमारा प्रियतम। एक ओर अग्नि उस स्त्री को अपना प्रेमी प्रतीत हुई, और दूसरी ओर उस पुरुष को वही अग्नि अपनी प्रेयसी दिखाई दी। जल उन दोनों के लिए जल न था, वह सब प्रियतम-स्वरूप हो रहा था। उनके लिए पत्थर पत्थर न थे, उनके लिए देह देह न थी, सभी कुछ केवल प्रियतम था और प्रियतम उन्हें हानि कैसे पहुँचा सकता था।

हिन्दू पुराणों में हमें एक बालक की कहानी पढ़ने को मिलती है। उसका पिता सम्राट् था। वह उसे धार्मिक जीवन से हटाना चाहता था। वह चाहता था कि लड़का मेरी ही तरह दुनियादार रहे, किन्तु पिता की घुड़कियों और फटकारों का लड़के पर कोई असर नहीं हुआ, वे उस पर व्यर्थ हुईं। बच्चे को उसके सद्संकल्प से रोकने के लिए पिता ने उसे प्रथम आग में डाल दिया, किन्तु आग ने उसे नहीं जलाया। तब सम्राट ने उसे बहते पानी में फेंक दिया, किन्तु पानी भी बच्चे को ऊपर-ऊपर उठाये रहा। उसे आग, पानी और कोई भी पंचभूत हानि नहीं पहुँचा सके—उसने उन की सच्ची दशा का अनुभव किया था। लड़का माया को छिन्न-भिन्न करके देहाध्यास से रहित होकर अपने आप को असली दशा में ले आया था। उसके लिए प्रत्येक वस्तु ईश्वर, पूर्ण प्रेम थी। उसे अपने चारों ओर अपने सच्चिदानन्द इष्टदेव के सिवा कुछ न दिखाई देता था। पिता की धमकियाँ, घुड़कियाँ, उसका क्रोध, उसका द्वेष, नहीं-नहीं, सारे पंचभूत बच्चे को अपने इष्टदेव के मधुर मुस्कान मात्र ही प्रतीत होते थे। धमकियाँ, घुड़कियाँ, और आँखें दिखाना, तलवार और ज्वाला मधुर स्वर्ग से किसी तरह कम न थीं। भला, अपने इष्टदेव से उसे हानि कैसे पहुँच सकती थी!

कुछ दिनों की बात है। एक हिन्दू साधु हिमालय के घोर जंगल

में गंगा के तट पर बैठा हुआ था। वह आप ही आप शिवोहम्-शिवोहम्-शिवोहम् (मैं ईश्वर हूँ) रट रहा था और दूसरे तट पर बैठे हुए कुछ और साधु उसे देख रहे थे। सहसा घटना-स्थल पर एक चीता आ गया। चीते ने आकर उसे अपने पंजों में दबोच लिया। यद्यपि वह चीते के नखों में दबा हुआ था, तथापि वही उच्चारण—शिवोहम्, शिवोहम्, शिवोहम्, उसी निर्भीक भाव से उसके मुख से निकल रहा था। चीते ने उसके हाथ-पाँव नोच डाले, फिर भी वही ध्वनि थी, वेग में किञ्चित भी कमी न हुई। आप इस घटना से क्या अभिप्राय निकालते हैं? "मैं परमेश्वर हूँ", "मैं परमेश्वर हूँ", इस कथन से आप क्या समझते हैं? क्या आप इसे अनीश्वरवादिता, नास्तिकता कहेंगे! इस कथन और नास्तिकता में बड़ा अन्तर है, वह उससे कोसों दूर है। यह अन्तिम अनुभव है। प्रेम की चोटी पर पहुँचने पर क्या प्रेमी अपने प्रियतम से अपनी अभेदता नहीं अनुभव करने लगते? क्या माता अपने बच्चे को अपने मांस का मांस, अपने ख़ून का ख़ून, अपनी हड्डियों की हड्डियाँ नहीं समझती? और क्या माता अपने बच्चे को अपना दूसरा अहं (अपना आप), अपनी दूसरी आत्मा नहीं मानती? क्या बच्चे के स्वार्थों और माता के स्वार्थों में अनन्यता नहीं होती है? होती है, अवश्य होती है।

उस परमात्मा को अंक में भर करके, उसे अंगीकार करके, उस से ब्याह करके उससे इस दर्जे तक और इतने अधिक अभेद हो जाओ कि विलगता का कोई भी चिन्ह न बाकी रहे। "ऐ प्रभु! तेरी मर्ज़ी पूरी हो" यह प्रार्थना करने के बदले तुम्हारे हृदय में यह हर्ष भरा रहे कि मेरी मर्ज़ी पूरी हो रही है।

अमेरिका में आजकल जो रीति-रिवाज और रहन-सहन का ढंग प्रचलित हैं, उससे प्राचीन-कालिक भारतवर्ष के रीति-रिवाजों और रहन-सहन में बड़ा अन्तर है। आजकल अमेरिका में बिजली की बत्तियाँ रात में आपके घरों को रौशन करती हैं। राम जिस काल की बात

कहता है, उन दिनों हिन्दू लोग मिट्टी के दीपक काम में लाते थे, और जब एक घर के दिये जल जाते थे, तब उससे मिले हुए घरों के लोग अपने पड़ोसी के घर से अपने दिये जला लेते थे। एक दिन शाम को एक कुमारी, जो बेतरह कृष्ण के प्रेम में आसक्त थी, अपना दिया जलाने के बहाने उनके बाप के घर गई हुई थी। यह कहने की जरूरत नहीं है कि जैसे दीपक के प्रकाश को देख कर पतिंगा बरबस उसकी ओर खिंच जाता है, उसी प्रकार वह भी कृष्ण-प्रेम में उन्मत्त होकर उनके मुख-मण्डल की दर्शन-लालसा से ही वहाँ गई थी। इसीलिए वह अन्य दूसरे ऐसे घरों में न जाकर जिनमें दीपक जल रहे थे, कृष्ण के ही घर गई थी। वास्तव में वह उन्हें देखने गई थी, दिया जलाने का तो उसने अपनी माता से बहाना किया था। उसे अपनी दीपक की बत्ती जलते हुए दीपक की बत्ती में लगानी थी; किन्तु उसके नेत्र दीपकों की ओर न थे, वे प्यारे नन्हें कृष्ण के चेहरे पर थे। वह कृष्ण के जादू-भरे मनोहर चेहरे को देख रही थी। इतने चाव से वह उन्हें देख रही थी कि उसे यह भी न जान पड़ा कि जलते हुए दीपक में मेरे दीपक की बत्ती जल रही है या उसमें मेरी उँगलियाँ जल रही हैं। दीपक की लौ उसकी उँगलियों को जलाती रहीं, किन्तु उसे कुछ ख़बर न हुई। समय बीतता गया और वह घर न लौटी। उसकी माता अधीर हो गई, वह राह देखते देखते थक गई। वह अपने पड़ोसी के घर गई। वहाँ उसने अपनी बेटी का हाथ जलते देखा, और यह भी देखा कि लड़की को इसकी कोई ख़बर नहीं है। उँगलियाँ झुलस गई थीं, उनका भरता बन गया था और हड्डियाँ जलकर कोयला हो गई थीं। माता ने ठंडी आह भरी, उसकी साँस रुक गई, वह कलपने और रोने लगी—"अरे मेरी बेटी, मेरी दुलारी! तू क्या कर रही है? तनिक बता तो सही कि तू यह क्या कर रही है?" माता की बात सुनकर लड़की को होश आया। किन्तु आप ध्यान रखें कि यथार्थ दृष्टिकोण इससे सर्वथा विपरीत है।

दुनिया से बेखबर होकर वह समाधि की शुद्ध चैतन्यता में जाग रही थी। माता के हो-हल्ला ने उसे वहाँ से हटाकर परिच्छिन्न भाव की क़ैद में जगा दिया।

ऐसे दिव्य प्रेम की दशा में, पूर्ण प्रेम की इस अवस्था में प्रेमी और प्रियतम अनन्य हो जाते हैं। "मैं वह हूँ" "मैं तू हूँ।"

यह तीसरी अवस्था है। और इसके बाद वह दशा आती है जिसमें इन प्रवचनों का, इन शब्दों का भी व्यवहार नहीं किया जा सकता।

ऊपर की कहानियाँ तीसरे प्रकार के प्रेम का दृष्टान्त हैं। आगे की कथा धार्मिक उन्नति की दूसरी अवस्था "मैं तेरा हूँ", "मैं तेरा हूँ," इस भाव का उदाहरण है। दो लड़के एक गुरु के पास आए, और उन्होंने धर्म की शिक्षा पाने की प्रार्थना की। गुरु ने कहा कि बिना तुम्हारी परीक्षा लिए मैं शिक्षा न दूंगा। अस्तु, गुरु ने उन दोनों को एक-एक कबूतर देकर कहा कि इन्हें ऐसे एकान्त स्थान में ले जाकर मार डालो, जहाँ कोई तुम्हें देखने न पावे। उनमें से एक लड़का तो सीधा आम सड़क पर आगया। सड़क पर बहुत से लोग आ-जा रहे थे। उनकी आँखों से बचने के लिए उसने उन की तरफ़ पीठ फेर ली और अपने सिर पर एक कपड़ा डालकर कबूतर का गला घोंट दिया। फिर सीधा शिक्षक के पास आकर बोला—"गुरुदेव ! स्वामीजी, स्वामीजी ! आपकी आज्ञा का पालन हो गया।" गुरु ने पूछा—"ठीक बताओ, कबूतर को मारते समय किसी ने तुम्हें देखा तो नहीं था ?" उसने कहा—नहीं, किसी ने नहीं देखा।" आइये, देखिये, उसके दूसरे साथी ने क्या किया।

दूसरा लड़का बस्ती से दूर एक घने जंगल में गया, और कबूतर का गला उमेठने वाला ही था; पर देखता है कि कबूतर की सौम्य, कोमल और चमकती हुई आंखें ठीक उसके चेहरे पर टकटकी लगाये हुए हैं। उन आँखों से उसकी आँखें चार होते ही कबूतर की गर्दन मोड़ने के निमित्त अपने प्रयत्न से उसने सहम कर हाथ सिकोड़ लिया। उसके

ख़याल में यह बात आई कि गुरु ने जो शर्त लगाई है, वह बड़ी बेढब है, बड़ी कठिन है। यहाँ इस कबूतर में ही गवाह मौजूद है। "ओह! मैं अकेला नहीं हूँ, ऐसे स्थान में नहीं हूँ, जहाँ मुझे कोई देखने वाला न हो, मैं तो देखा जा रहा हूँ। अब क्या करूं? कहाँ जाऊँ?" वह आगे बढ़ता-बढ़ता एक दूसरे वन में पहुँचा। वहाँ भी जब वह कबूतर की गर्दन उमेठने वाला था, तब कबूतर की आँखों से उसकी आँखें मिल गईं, और कबूतर ने उसे देख लिया। 'दृष्टा' स्वयं कबूतर में ही था।

बारम्बार उसने कबूतर को मार डालने की चेष्टा की, बारम्बार उसने कोशिश की, किन्तु गुरु की लगाई हुई शर्त को पूरा करने में वह असफल रहा। उदास होकर, टूटा दिल लेकर वह गुरु के पास लौट आया, और जीवित कबूतर गुरु के चरणों में रख दिया। उसने रोकर कहा--"गुरुजी! मैं यह शर्त पूरी नहीं कर सकता। फिर भी कृपा करके मुझे ब्रह्म-ज्ञान की शिक्षा दीजिए। यह परीक्षा मेरे लिए बड़ी कठिन है। मैं इस परीक्षा में नहीं ठहर सकता। कृपया मेरे ऊपर करुणामय हो जाइये, मुझ पर दया कीजिये, और मुझे ब्रह्म ज्ञान दीजिये, मुझे उसकी ज़रूरत है, मैं उसके बिना घोर दुःख में हूँ।" गुरु ने बच्चे को गोद में उठा लिया, उसे अपनी बाहों में लपेट लिया, प्यार से चूमा और पीठ ठोंकी। गुरु ने प्यार से कहा--"ऐ प्यारे! ऐ प्यारे बच्चे! जिस पक्षी का तुम वध करने वाले थे, उसकी आँखों में जिस तरह तुमने देखनेवाले को देखा है, उसी तरह जहाँ कहीं तुम्हें जाने का संयोग हो और जहाँ कहीं किसी प्रलोभन से प्रेरित होकर तुम कोई पाप करने को उतारू हो, वहीं ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव करो। जिस नारी की तुम्हें उत्कट लालसा हो, उसके हाड़-मांस और नयनों में दृष्टा को, साक्षी को, प्रत्यक्ष देखो। यह अनुभव करो कि उसके नेत्रों से मेरा प्रभु मुझे देख रहा है। मेरा प्रभु मुझे देखता है। ऐसा आचरण करो, मानो तुम सदा परम प्रभु के सामने

हो, सदा परमेश्वर से तुम्हारा ग्रामना-सामना है, तुम सदैव प्यारे की नज़र के नीचे हो।"

सुना जाता है कि नेपिल्स के एक बड़े ग्रजायबघर की छत पर एक सुन्दर फ़रिश्ते का सा चेहरा है। इस संग्रहालय के चाहे जिस भाग में ग्राप हों, चाहे जिस हिस्से को ग्राप देखते हों, चाहे छत पर जायें, चाहे फ़र्श पर ग्राप हों, फ़रिश्ते की निर्मल चमकीली तेजस्वी ग्राँखें सीधी ग्रापकी ग्राँखों से मिली रहती हैं। जो लोग ग्राध्यात्मिक उन्नति की दूसरी दशा में होते हैं, वे यदि सच्चे हैं, तो निरन्तर प्रभु के नेत्रों के नीचे रहते हैं। वे यही समझते ग्रौर ग्रनुभव करते हैं कि हम चाहे जहाँ जायँ, चाहे घर की सब से भीतरी कोठरी में हों, चाहे वन की ग्रत्यन्त एकान्त गुफाग्रों में हों, हम सदैव परमेश्वर के नयनों के सामने रहते हैं, वह निरन्तर हमें देखता रहता है। हम "उसके प्रकाश" से प्रकाशित होते रहते हैं, हम "उसकी कृपा" से परिपुष्ट होते रहते हैं।

ग्रब हम ग्रात्मविकास की प्रारम्भिक दशा पर ग्राते हैं। "मैं उसका हूँ! मैं ईश्वर का हूँ।" यह भाव प्रारम्भिक दशा का सूचक है। किन्तु, ग्रोह! धर्मोन्नति की प्रारम्भिक दशा का भी ग्रनुभव करना लोगों के लिए कितना कठिन है। वास्तव में यदि कोई मनुष्य सच्चा है, ग्रसल में एकाग्र चित्त है, सच्चा भक्त है, यदि वह ग्रपने विश्वास के ग्रनुसार कर्म करता है, कि मैं उसका हूँ; यदि इस विचार को ग्रपने रक्त के साथ ग्रपनी नाड़ियों में उतार लेता है, ग्रपने रक्त की प्रत्येक बूंद में इसका ग्रनुभव करता है, यदि वह इस प्रारम्भिक भाव को ही पूर्णतः ग्रपने में भर लेता है, तो वह इस लोक में देवदूत (फ़रिश्ता) हो सकता है।

भारत का एक ग्रति पूज्य महापुरुष ग्रपनी युवावस्था में एक ऐसे स्थान में काम करता था, जहाँ सदा भिक्षा देना, लोगों को भोजन ग्रौर रुपया-पैसा बाँटना ही उसका काम था। एक दिन कुछ गरीब लोग उसके पास ग्राये। जिन्हें उसके मालिक ने तेरह मन ग्राटा देने की ग्राज्ञा

दी थी; उन्हें वह एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः करके आटा देने लगा। आटा देते समय वह ज़ोर-ज़ोर से गिनती गिनता जाता था। भारतीय भाषा में संख्या तेरह, थरटीन को कहते हैं। भारतीय भाषा में यह बड़े ही मार्के का शब्द है। इसके दो अर्थ हैं एक तो तेरह--दस और तीन का योग, और दूसरे अर्थ हैं, "मैं तेरा हूँ। मैं तेरा हूँ। मैं ईश्वर का हूँ। मैं उसी अंश का हूँ, मैं उसी का हूँ।"

लो, जब बारह मन देने के बाद तेरह मन देने की बारी आई और जब वह उन्हें तेरहवाँ मन दे रहा था, और तेरा-तेरा का शब्द ज़ोर से कह रहा था, तब उसमें ऐसे पवित्र संस्कार उदय हुए कि उसने वास्तव में अपनी देह और अपना सर्वस्व ईश्वरार्पण कर दिया। वह दुनिया की सारी बातें भूल गया, वह आपे से परे हो गया। नहीं-नहीं, वह अपने वास्तविक आपे में पहुँच गया। परमानन्द की इस दशा में वह तेरा, तेरा, तेरा, तेरा, रटने लगा, और सारी दुनिया से बेख़बर हो, तेरा, तेरा कहता हुआ, एक मन के बाद दूसरा मन तब तक देता रहा, जब तक वह परमानन्द की दशा में आकर, आत्म-साक्षात्कार की दशा में, तुरीयावस्था में, लीन हो कर मूर्च्छित नहीं हो गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जो लोग प्रारम्भिक दशाओं में हैं, वे भी कभी-कभी अत्यन्त ऊँचे चढ़ सकते हैं, यदि वे उतने ही साधु और सच्चे हैं, जितने उनके वचन होते हैं; यदि वे सच्चे और उत्सुक हैं, यदि वे ईश्वर की आँखों में धूल नहीं झोंकना चाहते, यदि वे ईश्वर से किये हुए वादों को, प्रतिज्ञाओं को तोड़ना नहीं चाहते। एक बार भी जब मन्दिर या गिर्जा में वे कहते हैं कि "मैं तेरा हूँ," तब उन्हें इसका अनुभव करना चाहिए, इसे जीवन में चरितार्थ करना चाहिए। इसे प्रत्यक्ष करते ही वे दिव्य आनन्द का उपभोग करने लगेंगे। यही सच्चा धर्म है।

दुनिया भर के भिन्न-भिन्न मत इन्हीं तीन शीर्षकों में बाँटे जा सकते हैं--"मैं उसका हूँ"! "मैं तेरा हूँ!", "मैं वही हूँ"। जहाँ तक

रूपों का सम्बन्ध है, दूसरा रूप, "मैं तेरा हूँ", पहले रूप, "मैं उसका हूँ" से ऊँचा है। और तीसरा रूप, "मैं वही हूँ" सर्वोच्च है। इन तीनों रूपों में से किसी में भी हम सच्चा धार्मिक भाव भर सकते हैं।

हिन्दुओं के अनुसार, सिद्धान्त की पहली अवस्था को सच्ची धार्मिक वृत्ति से पालन करनेवाले इसी जीवन में या दूसरे जन्म में सिद्धान्त की सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त होंगे। पहले वे सिद्धान्त की दूसरी अवस्था को प्राप्त होंगे, और फिर सच्ची धार्मिक वृत्ति की धारणा करते हुए इसी जन्म या दूसरे आने वाले जन्मों में धीरे-धीरे उत्तरोत्तर उच्चतम धार्मिक सिद्धान्त—"मैं वही हूँ", "मैं तू ही हूँ"—पर चढ़ेंगे। जब यह दशा प्राप्त हो जाती है, तब फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। मनुष्य स्वतंत्र है, स्वतंत्र है, स्वतंत्र है! मनुष्य ईश्वर है, ब्रह्म है! वह अन्तिम सिरे पर पहुंच कर कहता है—"अहं ब्रह्माऽस्मि।"

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

Oh! brimful is my cup of joy,
  Fulfilled completely all desires ;
Sweet, moaning zephyrs I employ,
  'Tis I in bloom their kiss admires.
The rainbow colours are my attires ;
  My errands run light, lightning fires.
All lovers I am, all sweethearts I,
  I am desires, emotions I.
The smiles of rose, the pearls of dew,
  The golden threads so fresh, so new.
Of sun's bright rays embalmed in sweetness,
  The silvery moon, delicious neatness,

The playful ripples, waving trees,
Entwining creepers, humming bees,
Are my expression, my balmy breath,
My respiration in life and death,
All ill and good, and bitter and sweet,
In that my throbbing pulse doth beat.
What shall I do, or where remove?
I fill all space, no room to move,
Shall I suspect or I desire?
All time is time, all force my fire,
Can I be doubt or sorrow—stricken?
No, I am verily all Causation.
All time is now, all distance here,
All problem solved, solution clear.
No selfish aim, no tie, no bond,
To me do each and all respond.
Impersonal Lord of foe and friend,
To me doth every object bend.

अरे! मेरे आनन्द का प्याला लबालब भरा है।
पूरी तरह सब इच्छायें पूरी हो गई हैं;
सवेरे की मधुर, मन्द वायु मेरी चेरी है,
(फूलों के) खिलाव में मैं ही उसकी चुम्बी सराहता हूँ।
इन्द्रधनुष के रंग मेरे वस्त्र हैं;
प्रकाश, दहकती हुई अग्नियाँ मेरे सन्देश ले जाती हैं,
सभी प्रेमी मैं हूँ, सभी प्रिय मैं,
अभिलाषायें मैं हूँ मैं ही मनोवृत्तियाँ।

गुलाब की मुस्कराहटें, ओस के मोती,
सुनहले तागे ऐसे ताज़े, ऐसे नये,
सूर्य की चमकीली किरणें मधुरता में पगी हुई,
रुपहला चन्द्रमा, रोचक स्वच्छता,
खिलाड़ी तरंगें, लहराते हुए वृक्ष,
लिपटी लताएँ, भनभनाती मधुमक्खियाँ,
मेरा वाक्य है, मेरी सुगन्धित श्वास ।
मेरा साँस लेना जीवन और मरण है ।
सब बुरा और भला, तथा कड़ुवा और मीठा
मेरी उन धड़धड़ाती नाड़ियों में उछलता है ।
क्या मैं करूं, या कहाँ हटूं ?
मैं सब स्थान घेरे हूँ, सरकने की कहीं जगह नहीं,
क्या मैं आशंका करूं या कामना करूं ?
सब काल मैं हूँ, सब शक्ति मेरी आग ।
क्या मैं सन्देह या शोक-पीड़ित हो सकता हूँ ?
नहीं, मैं सचमुच सम्पूर्ण हेतु हूँ ।
सब काल 'अब' है, सब देश 'यहाँ',
कोई स्वार्थ पूर्ण उद्देश्य नहीं, न आसक्ति, न बंधन,
हर एक और सब मेरी अनुकूलता करते हैं ।
(मैं हूँ) शत्रु और मित्र का अकर्तृक (निष्काम या निर्विकार अथवा निराकार) प्रभु,
हर एक पदार्थ मेरे आगे झुकता और प्रणाम करता है ।

———

३

परमार्थ-निष्ठा और मानसिक शक्तियाँ

[१५ दिसम्बर, १९०२ को हर्मिटिक ब्रादरहुड हाल, सन-फ्रांसिस्को में दिया हुआ व्याख्यान]

नं० ५०९ वान, नैस, ऐवेन्यू, सन-फ्रांसिसको, कैलीफोर्निया में प्रश्नोत्तर के रूप में दी हुई स्वामी राम की व्याख्यानमाला का पहला व्याख्यान

प्रश्न—क्या गुह्य मानसिक शक्तियों को बढ़ाना और मृतात्माओं से बातचीत और व्यवहार करना ठीक हो सकता है? और यदि ठीक हो, तो इसके लिए क्या कोई निश्चित उपाय है, जिनका हमें अनुसरण करना चाहिए?

उत्तर—पूरी तरह इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें ऐसे विषयों पर वेदान्त के दृष्टिकोण के अनुसार ब्योरेवार विचार करना होगा।

वेदान्त के अनुसार दो मार्ग हैं, प्रवृत्ति-मार्ग और निवृत्ति-मार्ग अथवा कर्म-मार्ग और ज्ञान या सन्यास-मार्ग। ईसाई-मत जिसे "कर्मों द्वारा मुक्ति" कहता है, वह वेदान्त के कर्म-मार्ग के अनुरूप है और ज्ञान-मार्ग उसके अनुरूप है जिसे ईसाई मत "विश्वास द्वारा मुक्ति" कहता है। दोनों में क्या अन्तर है?

हिन्दुओं की व्याख्या के अनुसार कर्म-मार्ग का लक्ष्य है स्वार्थपूर्ण

व्यक्तिगत शक्ति का संचय, संसार में साम्राज्य की वृद्धि। अपने अधिकारों और सम्पत्ति को बढ़ाना, फैलाना और विस्तीर्ण करना, यही कर्म-मार्ग का उद्देश्य है। उन्नति की एक विशेष अवस्था में यह हर एक के लिए स्वाभाविक होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत राज्य को फैलाना और बढ़ाना चाहता है, किन्तु यह मार्ग सच्ची अमरता या जीवन सार्थक कराने वाला नहीं है। हमें इस पथ पर प्रयोग और अनुभव प्राप्त करने पड़ते हैं किन्तु ऐसा समय अवश्य आता है, जब हमें इस रास्ते से लौटना पड़ता है। स्वतः हम इस ग्रहणशील, कामनाशील, आशाशील अज्ञान को छोड़कर वैराग्य का मार्ग अंगीकार करते हैं। हमारे परम सुख के लिए निवृत्ति-मार्ग अनिवार्य है।

कर्म-मार्ग तीन प्रकार का है। वास्तव में यह कर्म-मार्ग कोरी दुनियादारी है, यदि इसके छोटे-छोटे उपविभागों पर ध्यान न दिया जाय, तो मुख्यतः इसका क्षेत्र तीन तरह के संसारों तक फैला दिखाई देता है—

प्रथम—प्रत्यक्ष संसार, स्थूल भौतिक संसार।

द्वितीय—मानसिक संसार, सूक्ष्म संसार।

तृतीय—अविज्ञात संसार, अज्ञात संसार।

ये तीन मुख्य संसार हैं, और एक हद तक ये एक दूसरे से स्वतन्त्र भी हैं।

जिस समय हम स्वप्न-भूमि में, सूक्ष्म अथवा मानसिक संसार में होते हैं, तब यह स्थूल भौतिक संसार मानों हमसे अलग रहता है, और तीसरे संसार, अविज्ञात संसार का भी यही हाल होता है। गहरी निद्रा-अवस्था के उदाहरण से इस तीसरे संसार की कुछ कल्पना की जा सकती है। उस दशा में तुम एक ऐसी दुनिया, एक ऐसे अज्ञात संसार में पहुँच जाते हो जो मेरे-तेरे के विचार से और अन्य सभी प्रकार के संकल्पों से सर्वथा शून्य है।

ईसाइयों का पैराडाइज़, मुसलमानों का बहिश्त, हिन्दुओं का स्वर्ग-

सभी दूसरी दुनिया, मानसिक संसार के विस्तार, पारलौकिक जगत् की चीज़ें हैं। दूसरे संसार के अनेक उपविभाग हैं, दूसरे संसार के किन्हीं उपविभागों में हम प्रेतात्माओं को स्थान देते हैं। इस समय हमें इन ब्यौरों में प्रवेश करने की ज़रूरत नहीं है। कर्म-मार्ग कोरी दुनियादारी है। वास्तव में निजी, व्यक्तिगत शक्ति के विस्तार करनेवाले सभी विचार दुनियादारी हैं।

एक बड़ा वैज्ञानिक भाप या बिजली के विषय में अनोखे आविष्कार करता है। इस कृति से वह अपनी व्यक्तिगत शक्ति बढ़ाता है, तथा प्रकृति के तत्वों पर हमारी प्रभुता बढ़ाने में सहायक होता है। हम उसके कृतज्ञ हैं, हम उसका मान करते हैं, हम उसका आदर और सम्मान करते हैं, किन्तु मुक्ति की प्राप्ति के लिए उसके पास नहीं जा सकते। हम उसके पास जाते हैं और उसके आविष्कारों की यथायोग्य क़द्र भी करते हैं, किन्तु पूर्ण आनन्द, ब्रह्मज्ञान के लिए हम उसके पास नहीं जाते। क्यों? क्योंकि उस विषय का उसे कुछ भी ज्ञान नहीं है।

इसी तरह यदि कोई बड़ा प्रत्यक्षमूलक मनोविज्ञानी, दार्शनिक है, जिसने मानसिक क्रियाओं के विषय में हमारा ज्ञान बढ़ाया है; हम उसके पास जाते हैं, हमें मन, बुद्धि, मनोगतभाव और भावनाओं के व्यापार बताने के कारण हम उसके आभारी होते हैं; किन्तु मन की असली शान्ति के लिए 'मिल' या 'स्पेंसर' सरीखे तत्व-वेत्ताओं की भी कोई शरण नहीं लेता। हर एक अपने-अपने मार्ग में बहुत अच्छा है, किन्तु जिस एक वस्तु की हमें जरूरत है, वह हर एक हमें नहीं दे सकता।

भारत में ऐसे अनेक लोग हैं, जिन्हें प्रेत-विद्या अर्थात् प्रेतात्माओं से मेल-मिलाप करानेवाली विद्या का अच्छा अनुभव होता है। ये लोग भूत-प्रेतों से सम्बन्ध रखते हैं, जो दूसरा संसार कहा जाता है, उसके विषय में इन्हें बहुत जानकारी होती है। किन्तु जैसे इस जगत् के भौतिक पदार्थों की जानकारी है, वैसे ही दूसरे जगत का ज्ञान है।

दुनियादारी तो दुनियादारी ही है, वह चाहे इस संसार कीं हो या दूसरे संसार की, चाहे इस प्रथम स्थूल संसार की हो या दूसरे मानसिक संसार की। असलियत या परमार्थतत्व इन सब जगतों का आधार है और इन सब से ऊपर है। तत्व की इस असलियत का ज्ञान ही एकमात्र आवश्यक वस्तु है। हम इन मानसिक-जगत् विशारदों का वैसा ही स्वागत करते हैं जैसा हम एक वैज्ञानिक या शास्त्रज्ञ का स्वागत करेंगे, किन्तु असली शान्ति और सच्चे सुख के लिए हम इनके सामने घुटने नहीं टेकते, इनके द्वारा हमें वह शान्ति नहीं मिल सकती।

कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई वैज्ञानिक या प्रत्यक्षवादी दार्शनिक आत्मज्ञान पा लेता है, प्रेत-विद्या-विशारद भी यथार्थ आत्मज्ञान से सम्पन्न हो जाता है, किन्तु उसकी मानसिक वा प्रेत-विद्या जाननेवाली शक्ति का अथवा मृतात्माओं से वार्तालाप करने की सामर्थ्य का उसके ब्रह्मज्ञान से इतना ही सम्बन्ध है जितना राम के गणित-विद्या-ज्ञान का सम्बन्ध राम के वेदांत से है। राम गणित-विद्या का उपाध्याय था, किन्तु इस वेदांत से उस गणित-विद्या का कोई वास्ता नहीं है जिसका कि वह प्रचार कर रहा है। हमें इन दोनों को एक में न मिलाना चाहिए।

भारतवर्ष में राम का एक मित्र, एक भला आदमी, इस प्रेत-विद्या में बड़ा निपुण था। कुछ लोग भूल से इस प्रेत-विद्या को आत्मवाद भी कह देते हैं। एक दिन एक स्थान पर उसने तमाशा दिखाया, उसकी आँखों पर पट्टी बाँध दी गई, और गणित-विद्या की एक पोथी उसके सामने रख दी गई। यह पुस्तक उसने कभी नहीं देखी थी। किन्तु आँखों पर पट्टी होने पर भी वह उसको पढ़ने लगा। गणित-विद्या के कुछ विशेष चिह्न होते हैं, और इस पुस्तक में ऐसे नाम थे जिन्हें वह नहीं जानता था। उसने एक कोरा ताव माँगा और गणित की पोथी के पन्नों में जो कुछ लिखा था, उसे कागज पर लिखने लगा। वह चिह्नों के विशेष नाम तो नहीं बतला सका, पर सब की नकल कर डाली। उसमें यह शक्ति

थी कि वह दूसरों के विचारों को भी जान सकता था। आप अपने हाथ से एकान्त में कुछ लिख लीजिए, वह तुरन्त उसकी नकल कर देगा। अच्छा, आप एक प्रकार से भले ही उसे आत्मवादी कह लें, किन्तु वह पवित्र चरित्रवान् पुरुष नहीं था, नाममात्र को भी नहीं। वह दुनियादार, केवल दुनियादार था। न वह पवित्र था और न सुखी!

इस प्रेत-विद्या (आत्मवाद) को प्रायः विज्ञान की पदवी दी जाती है, और विज्ञान की हैसियत से हम उसका आदर कर सकते हैं, किन्तु इसको उस ज्ञान से कदापि न मिलाना चाहिए जो हमें सच्चिदानन्द का दाता है, जो हमें सब प्रलोभनों की पहुँच से परे उठा देता है।

हम भारत के एक ऐसे मनुष्य को जानते हैं, जो देखने में ६ महीने तक मुर्दा बना रहा। जीवन के आधार-रूप प्राणों को रोक देने की इस क्रिया को 'खेचरी मुद्रा' कहते हैं और हठयोग के ग्रन्थों में इसकी क्रिया पूरे विवरण-सहित दी हुई है। उसे खेचरी मुद्रा का अच्छा अभ्यास था। उसमें जीवन का कोई चिह्न नहीं दिखाई देता था, उसकी नाड़ियों में रक्त नहीं बहता था, किन्तु ६ महीने बाद वह फिर जी उठा। वह आदमी सचमुच बड़ा चमत्कारिक था। उसे दूसरा ईसा कह सकते हैं। वह केवल तीन दिन नहीं, पूरे छः मास तक मुर्दा रहने के बाद जी उठा था। किन्तु वह न सुखी था और न स्वतन्त्र। उसने जो पाप किये थे, राम को उनका वर्णन करने की कोई ज़रूरत नहीं। जिस राजा के दरबार में वह ऐसे काम करता था, उसने उसे अपने राज्य से निकाल दिया था।

एक और दूसरा आदमी था, जो पानी पर चलता था। एक सच्चे साधु ने हँस कर उससे पूछा कि यह शक्ति पाने में तुम्हें कितना समय लगा? उसने उत्तर दिया, सत्रह वर्ष। साधु ने उत्तर दिया—"सत्रह वर्ष में तुमने एक ऐसी शक्ति पाई है जिसका मूल्य दो पैसा है। हम एक मल्लाह को दो पैसे देते हैं और वह हमें नदी के पार उतार देता है।"

यथार्थ में सभी व्यक्तिगत शक्तियाँ परिच्छिन्न हैं। वे तुम्हें उतना ही बाँध लेती हैं जितना कि कोई अन्य सम्पत्ति बन्धन में डाल सकती हैं। ज़ंजीरें ज़ंजीरें ही हैं, चाहे लोहे की हों या सोने की, वे समान रूप से तुम्हें गुलाम बनाती हैं।

यदि ये शक्तियाँ मनुष्य को अति पवित्र बनाती होतीं, तो हमें कुत्ते को अति पवित्र समझना होगा। कुत्ते सूंघकर जान लेते हैं कि बारहसिंगा कहाँ है। कुत्तों में ऐसी घ्राण-शक्ति होती है, जैसी मनुष्य में नहीं होती, इसलिए वे अवश्य पवित्र होंगे।

एक फ़क़ीर था, जो किसी भी मनुष्य को बादशाह बना सकता था। यह शक्ति उसे कैसे मिली थी ? पूछने पर उसने उत्तर दिया कि मैंने पहले उपवास किये और तदुपरान्त गौओं की जूठन खाई, फिर एक विशेष विधि से बहुत दिनों तक रहा और फलस्वरूप यह विशेष शक्ति पाई। एक भाई ने उससे कहा—"राज्य भोगने का अधिकार तुम हर एक व्यक्ति को दे सकते हो, किन्तु तुम्हें तो केवल गौओं की जूठन ही मिलती है।" भारतवासी इन शक्तियों के चाहनेवाले मनुष्यों का ऐसा ही आदर और मान करते हैं। सभी भारतीय जानते हैं कि केवल आत्मज्ञान ही ऐसा ज्ञान है, जो हमें सब ज़रूरतों से परे कर सकता है।

एक हठयोगी एक भारतीय भूपति के सामने आया और उसने लम्बी समाधि ले ली। जीवन का कोई चिह्न उसमें बाक़ी न रहा। वर्षा और तूफ़ान से उसकी रक्षा करने के ख्याल से लोगों ने उसके ऊपर एक झोंपड़ा बना दिया। एक रात को बड़ा बेढब तूफ़ान आया और झोंपड़े की ईंटें योगी के सिर पर गिर पड़ीं। वह फिर जीवित हुआ और पहली बात जो उसके मुख से निकली, यह थी "मेरा इनाम, राजा मेरा इनाम एक घोड़ा, मुझे एक घोड़ा चाहिए महाराज !" इस प्रकार भारतवासी जानते हैं **कि जब तक समाधि की अवस्था रहती है, तभी तक वे अच्छी हालत में रहते हैं, वे सुखी रहते हैं, किन्तु जब भौतिक धरातल पर**

(परिच्छिन्न भाव में) **आते हैं, तब उतने ही दुखी रहते हैं जितना कि कोई भी दूसरा प्राणी।**

मुख से कटार निकालना, तलवार या बड़ा चाकू निगल लेना, त्वचा में सूजा छेद लेना, और ऐसी दूसरी बहुतेरी बातें भारत में बहुत साधारण हैं। दूसरी बात, तीन या चार घंटे तक मन को समाधि-अवस्था में रखना वैसी समाधि-अवस्था नहीं है जिसकी प्राप्ति के लिये आत्मज्ञान अनिवार्य हो। भारत में हज़ारों मनुष्य इसका अभ्यास करते हैं, किन्तु अधिकांश मामलों में यह अभ्यास केवल स्वर्ग से प्रोमीथियस (Prometheus) की अग्नि की चोरी के तुल्य है। यह हमारी आँखों के सामने थोड़े समय के लिए पर्दा डाल लेने के समान है, किन्तु ऐसे अभ्यासों से सदा के लिये शान्ति नहीं मिल सकती।

एक सरोवर या झील का उदाहरण लीजिए। उसके ऊपर काई की हरी चादर बिछी है। इस चादर को हटाते ही नीचे का सुन्दर, मनोरम जल चमकने लगता है, किन्तु तुम्हारे हाथ के अलग हटते ही बिल्लोर-से निर्मल जल को फिर हरी चादर ढक लेती है। चित्त की झील को साफ़ कर डालना युक्तिसंगत, साध्य और व्यावहारिक है। हरी चादर को हटाकर कुछ मिनटों के लिए उसे साफ़ कर लेने से हम ध्यानावस्था को प्राप्त हो सकते हैं, किन्तु इस तरह रोग सदा के लिये चंगा नहीं होता। इसके लिये बारम्बार थोड़ी-थोड़ी हरी चादर या काई निकालो और दूर फेंक दो। इस तरह बाक़ी चादर पतली होती जायगी और अन्त में सारी झील साफ़ हो जायगी। चित्त की झील को सदा के लिए साफ़ करने का यही उद्देश्य वेदान्त ने अपने सामने रखा है।

पुनः एक सर्प का उदाहरण लो। यह साँप जब सर्दी से ठिठुर जाता है, तब कुंडली मार कर गेंद बन जाता है। उस समय आप उसे हथिया सकते हैं। उसे घर ले जाओ और आग के सामने रख दो। गर्मी पाकर वह अपने को फैला लेगा और फिर काटने लगेगा। उसकी

द्वेष-बुद्धि नष्ट न होने के कारण फिर से लौट आती है, और विष तो उसमें है ही। इस लिये सर्प के विष को समूल नष्ट करने की आवश्यकता है। कुछ लोगों के ध्यान करने की क्रियाओं और अभ्यासों का यह दूसरा उदाहरण है। अधिकांश लोगों के मामले में समाधि की अवस्था केवल मन-रूपी साँप के कुंडली मार लेने के सदृश होती है। कामनायें इस साँप के ज़हरीले दाँत हैं, जो कुछ काल के लिये वाह्यतः बेकार हो जाते हैं। यह क्षुद्र चित्त सोने लगता है, दूसरे शब्दों में मन समाधि की अवस्था को प्राप्त हो जाता है। साँप प्रत्यक्षतः मुर्दा है, सर्दी खा गया है, किन्तु असल में मरा नहीं है। साँप को हथियाने की एक दूसरी विधि है। बीन बाजा लेकर हम तब तक मंत्र फूंकते रहते हैं, जब तक वह मोहित न हो जाए। फिर अपनी प्रवीणता से हम साँप को पकड़कर उसके दाँत और विष-थैलियाँ उखाड़ लेते हैं। अब तो साँप विष और दन्त-हीन है, वह हमें हानि नहीं पहुँचा सकता, मन को क़ाबू में लाने का यह वेदान्ती ढंग है।

प्रेत-विद्या-विशारद आम तौर पर अपने मन को उस अवस्था में ले आते हैं जिसकी तुलना सर्दी खाये हुए साँप से की जा सकती है। उस समय वे आनन्द की अवस्था में भी होते हैं, किन्तु फिर कर्ममय जीवन में उनके नातेदार, भाई-बहन, शत्रु-मित्र, सब आ-आकर कामनाओं तथा मनोविकारों के सर्प को गरमा देते हैं, वे इस साँप को जगा देते हैं। मनोविकारों तथा कामनाओं रूपी सर्प के जाग जाने पर अन्तर्गत चित्त फिर दुष्टता करने लगता है। साँप के विष-दन्त उखाड़े नहीं गये थे, वे उतने ही जहरीले होते हैं जितने पहले। इस प्रकार चरित्र का निर्माण नहीं होता, सच्ची रूहानियत परमार्थ-निष्ठा प्राप्त नहीं होती।

इन लोगों में से अधिकांश तो अपनी रुपया कमाने की शक्तियों में वृद्धि करना चाहते हैं। मन की एकाग्रता बहुत ठीक है, किन्तु साँप को विष-हीन बनाओ। सर्प के विषदन्त उखाड़ डालो, सब प्रलोभनों से

ऊपर उठो, अपना चरित्र बनाओ। इन बातों पर ध्यान दीजिये। तुम्हें यही याद रहनी चाहिए। सारी कमज़ोरियों के दूर हो जाने पर, तुम फिर विषदन्त-हीन सर्प हो जाते हो, बेदाँतों के साँप होते हो। ऐसी हालत में भी तुम ठिठुर सकते हो। किन्तु उस हालत में रहने की अब कोई ज़रूरत नहीं। तुम्हारे डंकों में अब ज़हर नहीं है। अब तुम चरित्रवान् हो और कर्ममय जीवन में भी अब तुम्हें क्षति नहीं पहुँच सकती, तुम उससे परे हो।

एक मनुष्य शराब पीते-पीते उन्मत्त हो जाता है, और उस दशा में अपना घर साढ़े सात हज़ार रुपये को बेच डालता है। उसी मतवाली दशा में साड़े सात हज़ार रुपये में अपना घर बेचने के लिये विक्रय-पत्र भी लिख देता है। उसकी स्त्री उसे शीघ्र ही सिरका या और कोई खट्टी चीज़ पिलाती है और वह होश में आ जाता है। तब उसे अपनी करतूत पर पश्चाताप होता है। वह अपना बड़ा भारी घर कौड़ियों के मोल बेच डालने की बेवक़ूफ़ी पर रंज करता है। अब वह घर मोल लेने वाले पर, मुक़दमा चलाने का निश्चय करता है और अपनी मदहोशी के आधार पर जिसके कारण वह अपने कामों का ज़िम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता, मुक़दमा जीत जाने की आशा करता है, क्योंकि उस समय वह सचेत नहीं था। यही हालत कुछ लोगों की है। वे एक तरह के नशे की हालत में हैं, और ऐसी हालत में वे ईश्वर के हाथ अपने को बेच डालते हैं; अपना सब कुछ दे देते हैं; अपनी सारी सम्पत्ति त्याग देते हैं; पिता, माता, बहन, भाई, मित्र--सब कुछ दे डालते हैं, सर्वस्व ईश्वरार्पण कर देते हैं। ईश्वर के लिये उन्होंने सर्वस्व त्याग दिया है। बहुत ख़ूब! वे उस समय योग (एकाग्रता) की अवस्था में होते हैं। किन्तु थोड़ी ही देर के बाद सांसारिक ज़रूरतें उन्हें सताने लगती हैं और छोटी-छोटी चिन्तायें डसने लगती हैं, वे उन्हें अपने अस्तित्व का बोध कराती हैं। उन्हें मानों सिरका दिया जाता है, जिससे सारा नशा

हिरन हो जाता है, और तब वे हर एक चीज़ परमेश्वर से लौटा लेते हैं, तब वे फिर कहने लगते हैं कि यह देह ईश्वर की नहीं, मेरी है; यह घर ईश्वर का नहीं, मेरा है। इतना ही नहीं, वे उल्टा माँगने लगते हैं। यहाँ तक कि वे उसे भी ले लेना चाहते हैं, जो उनके पड़ोसी का है। वे ईश्वर से हर एक वस्तु लौटा लेना चाहते हैं। थोड़ी देर के लिये भी ब्रह्म-भाव में रहना बुरा नहीं, अच्छा है। किन्तु सच्ची शान्ति और सुख तुम्हें केवल तभी हो सकता है, जब तुम पूर्णता की उस अवस्था में पहुँच जाते हो, जब तुम हर एक वस्तु सदा के लिए ब्रह्मार्पण कर देते हो, जब तुम अपने चरित्र का निर्माण कर डालते हो। फिर कोई क्लेश तुम्हें छू नहीं सकता। तब दुनिया को कोई चिन्ता, कोई डर, कोई आशा नहीं रह जाती। तुम इन सब झगड़ों से ऊपर उठ जाते हो।

वेदान्त के अनुसार, यदि एक क्षण के लिए भी तुम परब्रह्म से युक्त हो जाओ, तो तुम्हें कुछ शक्तियाँ मिल सकती हैं। किन्तु क्या तुम सारी दुनिया अपनी नहीं करना चाहते? त्याग की उन ऊँचाइयों पर यदि विधिपूर्वक पहुँचने में तुम सफल हो जाओ, तो सब कुछ तुम्हारा हो जाता है।

यदि राजा के किसी पदाधिकारी की हम तलाश करें, तो अकेले उसी को तो हम अपना मित्र बना सकते हैं, उसके द्वारा हम बादशाह और दूसरे अधिकारियों को अपना मित्र बनाने में समर्थ हो सकेंगे या नहीं, यह संदेहात्मक है। इसलिए पहले बादशाह की तलाश करो और तब दूसरे मातहत स्वत: अपनी ही इच्छा से तुमको तलाश करेंगे और तुम्हारे मित्र हो जायेंगे।

भारत में भी कुछ लोग विशेष शक्तियाँ पाना चाहते हैं और उन को पाने में सफल भी होते हैं। किन्तु सच्चे लोग इनसे घृणा करते हैं। वे त्याग के मार्ग पर चलना चाहते हैं, वे एक ही आवश्यक वस्तु

को जानना चाहते हैं। त्याग के सिवा इस संसार में कोई दूसरी शक्ति नहीं। किन्तु विशेष शक्तियों के पाने में त्याग अधूरा होता है। त्याग को पूर्ण होने दो, तो राज्य भी पूर्ण मिलेगा। सारी दुनिया तुम्हारी हो जायगी। वे लोग जो त्याग के मार्ग पर चलते हैं ख़ुद बादशाह को ढूंढ़ लेते हैं। अपने ही अन्दर बादशाह का साक्षात्कार हो जाने पर सभी कर्मचारी अपने आप तुम्हारे सेवक हो जाते हैं। यह स्वाभाविक मार्ग है। तब विशेष शक्तियाँ स्वतः तुम्हें ढूंढ़ने को विवश होंगी। तुम शक्तियों को न ढूंढ़ों, शक्तियाँ तुम्हें ढूंढ़ेंगी।

क्या प्रेत-विद्या की शक्ति को बढ़ाना उचित है? इस शक्ति ही के लिए इसका बढ़ाना दुनियादारी है। वेदान्त कहता है, तुम मृतात्माओं से वार्तालाप कर सकते हो, निस्सन्देह यह संभव है। किन्तु जीतों से व्यवहार करना क्या उतना ही अच्छा नहीं? एक प्रकार से उससे भी अधिक अच्छा है।

यहाँ एक दूसरा प्रश्न उपस्थित होता है कि मरे हुए हमारे पास आते हैं, या हमारा अपना आप ही उन रूपों को ग्रहण कर लेता है। वेदान्त का सिद्धान्त है कि यदि स्थूल भौतिक जगत् की दृष्टि से तुम सूक्ष्म जगत् (प्रेत-जगत) पर दृष्टि डालते हो, तो तुम कह सकते हो कि प्रेत तुम्हारे पास आते हैं, किन्तु तत्त्व-दृष्टि से तुम्हारा यह भौतिक जगत् ही नाम-मात्र है, तब स्थूल भौतिक जगत् के लोगों का यह कहना भी ग़लत होता है कि "अमुक व्यक्ति मुझसे मिलने आया था।" तत्त्व की दृष्टि से यह ग़लत है, क्योंकि वह केवल तुम्हारा अपना आप ही है, जो तुम्हारे सामने, तुम्हारे ऊपर, तुम्हारे नीचे खड़ा हुआ है, अन्य कोई नहीं। इन सब बाह्य विधि नाम-रूपों में स्वयं तुम्हीं आविर्भूत हुए हो। वेदान्त के अनुसार बन्धु, मित्र तुम ही हो। वस्तुतः यह कहना सत्य नहीं है कि प्रेत आते हैं; दूसरे रूपों और दूसरी छायाओं में प्रकट होकर तुम ही प्रेत बन जाते हो।

क्या मानसिक (प्रेत-विद्या) शक्ति प्राप्त करने के लिये कोई नियत

उपाय अनुसरण करने योग्य हैं? हाँ, हैं। यदि कोई इंजीनियर बनना चाहता है, तो उसे तत्सम्बन्धी विशेष शिक्षा प्राप्त करनी होती है; यदि कोई वैद्य होने की इच्छा करता है, तो उसे वैद्यक महाविद्यालय में जाना होता है। इसी तरह इन प्रेत-विद्या-विषयक चमत्कारों को देखने के लिए हमें विशेष शिक्षा पानी होगी, किन्तु इस समय उसके बताने की ज़रूरत नहीं है। राम छाया-मूर्तियों या भूत-प्रेतों के पीछे दौड़ने या परेशान होने की सिफारिश न करेगा। जहाँ कोई पवित्र पुरुष रहता है, वहाँ जाने की उनकी हिम्मत नहीं पड़ती।

राम एक बार हिमालय की एक गुफा में रहता था, जो प्रेतों का निवास-स्थान होने के लिये विख्यात थी। आस-पास के ग्रामों में बसने-वाले लोगों का कहना था कि अनेक साधु एक ही रात उस गुफा में रह-कर मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं। साथ ही कुछ दर्शकों के डरने और मूर्छित हो जाने की बात भी कही जाती थी। जब राम ने उस गुफा में रहने की इच्छा प्रकट की, तो हर एक व्यक्ति आश्चर्य में पड़ गया। राम कई महीने उस गुफा में रहा और एक भी प्रेत या भूत नहीं आया। मालूम पड़ता है कि वे सब भाग गये थे। गुफा के भीतर साँप और बिच्छू थे, और उसके बाहर बाघ और चीते। वे बराबर वहीं बने रहे, किन्तु राम के शरीर को कभी कोई हानि नहीं पहुँचाई।

वेदान्त सिद्ध करता है कि स्वतंत्र या जीव-मुक्त लोग मृत्यु के बाद कदापि प्रेतयोनि नहीं पाते। भूतों या प्रेतों का जामा उन्हें धारण करना पड़ता है, जो अपनी ही कल्पनाओं और इच्छाओं के गुलाम होते हैं! उन छायात्मक आकारों में केवल आसक्त प्राणियों को ही बँधना पड़ता है।

वार्तालाप करने वालों में डॉक्टर जॉनसन शिरोमणि माना जाता था। उससे तर्क में पार पाना बड़ा कठिन काम था। एक तो उसके वाक्वाणों का निशान कभी चूकता ही न था और यदि चूक भी जाय तो भी वह येन-केन-प्रकारेण वाक्-युद्ध में प्रतिपक्षी को चित्त कर देता था। संक्षेप में,

वह वाद-विवाद में प्रतिद्वंदी को चुप किये बिना कभी न हटता था। ऐसे डॉक्टर जॉनसन ने एक दिन स्वप्न में 'बर्क' से अपने को परास्त होते देखा। जॉनसन जैसे चरित्र वाले मनुष्य के लिए यह स्वप्न बड़ा ही भयंकर था। वह उठ बैठा, उसे बड़ी बेचैनी हुई, वह फिर सो न सका। किन्तु मन अपनी प्रकृति—अपनी दैवी प्रकृति—के अनुसार अधिक काल तक खिन्न नहीं रहता। डॉक्टर जॉनसन को भी अपने मन को क़ाबू में लाना पड़ा, किसी-न-किसी तरह उसे शांत करना पड़ा। वह अपने को धीरज देने लगा। उसने विचार किया और इस परिणाम पर पहुँचा कि बर्क की युक्तियाँ भी मेरे ही मन की उपज हैं। असली बर्क उनके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानता है, वास्तव में मैंने खुद ही अपने सामने बर्क के रूप मे उपस्थित होकर अपने को नीचा दिखाया है। बस, संसार के द्वैत के विषय में वेदान्त का ऐसा ही सिद्धान्त है।

इसी प्रकार तुम स्वयं ही अपने सामने भूतों, प्रेतों, शत्रुओं, मित्रों, पड़ोसियों, झीलों, नदियों और पहाड़ों के रूप में प्रकट होते हो। स्वप्नों में तुम नदियाँ और पहाड़ देखते हो। यदि वे तुमसे सचमुच बाहर हों, तो बिछौने को नदी के जल से भरपूर हो जाना चाहिए और तुम्हें दिखाई पड़नेवाले पहाड़ों के बोझ से तुम्हारे कमरे को तुम्हारे पलंग के साथ दबकर चकनाचूर हो जाना चाहिए। वास्तव में वे विशाल पर्वत और बढ़ते हुए नदी-नाले सब तुम्हारे भीतर हैं। तुम अपने आपको दो टूक कर लेते हो, एक ओर तुम बाहरी व्यापारों के रूप में प्रकट होते हो और दूसरी ओर तुम्हीं उन पर क्षुद्र विचार करनेवाले कर्ता बन जाते हो। वास्तव में कर्ता भी तुम्हीं हो और कर्म भी तुम्हीं हो। तुम ही आत्मा हो और तुम ही नाम-रूपात्मक अनात्मा भी। तुम ही सुन्दर गुलाब हो और प्रेमी बुलबुल भी तुम हो। तुम फूल हो और भौंरा भी तुम हो! हर एक चीज़ तुम हो। भूत और प्रेत, देवता और देव-दूत, पापी और महात्मा, सब तुम ही हो। इसे जानो, समझो, अनभव

करो और तुम मुक्त हो। यह है संन्यास (त्याग) का मार्ग। अपना केन्द्र अपने से बाहर मत बनाओ, अन्यथा ठोकरें खाते रहोगे। अपना पूर्ण विश्वास अपने में रक्खो, सदैव अपने केन्द्र में स्थित रहो, फिर तुम्हें कोई भी चीज़ न हिला सकेगी।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

—

४

चरित्र-सम्बन्धी आध्यात्मिक नियम

[१७ दिसम्बर, १९०२ को हर्मिटिक ब्रादरहुड हाल, सनफ्रांसिस्को में दिया हुआ व्याख्यान]

जिस मनुष्य ने अपने आप को एक बार जान लिया है, उसके लिए फिर संसार में ऐसी कौन-सी वस्तु रह जाती है जिसकी वह इच्छा करे? राजा-महाराजाओं के ख़ज़ानों की तो बात ही क्या, सारे विश्व-ब्रह्माण्ड की कोई भी वस्तु उनका ध्यान नहीं खींच सकती। दुनिया की कोई भी सुन्दरता और कोई भी मनोहरता उसका ध्यान नहीं आकर्षित कर सकती, विज्ञान के समस्त भण्डारों में भी कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो उसे लुभा सके। अरे! ऐसा सुख, ऐसा परम प्रमोद, ऐसा पूर्ण आनन्द, और कितना अवर्णनीय! वह भाषातीत और अनिवर्चनीय है। वह अनन्त हर्ष, वह परम आह्लाद, वह असीम सुख तुम ही तो हो, वह तुम्हारा असली स्वरूप है, वही तुम्हारी आत्मा है।

बस, यह जानते ही तुम समस्त ज़रूरतों तथा आवश्यकताओं से ऊपर जा खड़े होते हो। इसे पाते ही अखिल विश्व तुम्हारा हो जाता है।

दुनिया के प्रपंचों, मृगतृष्णाओं और माया-मोह के पीछे हम अनन्त सुख, इस परम आनन्द को छोड़कर, ओह! संसार के लोग

कैसी भयंकर भूल करते हैं, कितनी बड़ी ग़लती करते हैं। सम्पूर्ण सुख तुम्हारा है, तुम वही हो। उसकी तलाश क्यों नहीं करते? अपने जन्म-स्वत्व पर अधिकार क्यों नहीं करते? ईसो (Esaw) की तरह लोग अपने जन्मजात स्वत्व, परमानन्द को पेट के लिये बेच देते हैं।

जूदास इस्कैरियट (Judas Iscariot) ने चाँदी के तीस टुकड़ों के लिये ईसा मसीह को बेंच दिया था। अपने असली आत्मस्वरूप ईसा को, प्रभुओं के प्रभु को, इस दुनिया के मायावी सुखों के लिए न बेंचो, ज़रा बुद्धि से काम लो। सच्चे बुद्धिमान बनो।

सच्चा सुख तुम्हारे भीतर है, स्वर्गीय अमृत का महोदधि तुम्हारे भीतर है। उसे अपने भीतर ढूंढ़ो, उसे मालूम करो, उसे ज्ञात करो। वह यहीं है, तुम्हारा असली 'स्वरूप'। वह शरीर, मन, बुद्धि नहीं है। वह न अभिलाषा है, न अभिलाषी, और न अभिलाषा का विषय। तुम शाश्वत इन सब से परे हो। विषयी, विषय और विषयेच्छा—सब आविर्भाव मात्र हैं। तुम हँसते हुए फूल के रूप में, चमकते हुए तारागणों के रूप में प्रकट होते हो। दुनिया में है ही क्या, जो तुम्हें किसी भी वस्तु का अभिलाषी बना सके?

ज़रा ॐ का उच्चारण करो, ॐ का जाप करो, और जब जपो, तब अपना सारा चित्त उसमें लगा दो, अपनी सारी शक्तियाँ उसमें भर दो, अपना पूरा अन्तःकरण उसमें रख दो, उसका अनुभव करने में अपने पूरे बल का प्रयोग करो। इस **'ॐ'** मंत्र का अर्थ है—"मैं वह हूँ" "मैं और वह एक हैं," "वही मैं हूँ" **ॐ, ॐ**। यदि सम्भव हो, तो ॐ जपते समय अपने चित्त के सामने अपनी सब कमज़ोरियों और अपने सब प्रलोभनों को एक-एक करके अपने पैरों से कुचल दो, उन्हें चूर-चूर करके बाहर निकालो, उससे ऊपर उठो और विजयी होकर आओ।

भारतीय पुराणों में एक सुन्दर कथा है। उसमें कृष्ण के यमुना में

कूदने का ज़िक्र है। यह देख कर पास खड़े हुए उनके पिता, माता, मित्र और कुटुम्बी सन्न रह गये। उनकी उपस्थिति ही में वे धारा में कूद पड़े। वे किंकर्त्तव्यविमूढ़-से थे। उन्होंने समझा कि कृष्ण गया, अब कभी बाहर न निकलेगा। कथा कहती है कि कृष्ण नदी की उस तह पर पहुँचे, जहाँ एक हज़ार फणों वाला नाग रहता था। कृष्ण अपनी बाँसुरी बजाने लगे, वे ॐ मंत्र गाने लगे, वे नाग के फणों को ठुकराने लगे, वे एक-एक करके नाग के शिरों को रौंदने लगे; किन्तु ज्योंही उन्होंने एक एक करके नाग के अनेक फण चूर्ण किये, त्योंही दूसरे फण निकल आये और इस तरह उन्हें बड़ी-बड़ी कठिनाई पड़ीं। किन्तु कृष्ण बराबर नाग के फणदार शिरों पर कूदते और नाचते रहे, वे अपनी बाँसुरी से मंत्र गाते रहे। वे निरन्तर अपना मंत्र जपते तथा नाग के शिरों को रौंदते रहे। आध घण्टे में नाग मर गया। मुरली के मनोहर स्वर और कृष्ण के चरणों-द्वारा नाग के मर्दन से हमें कोई प्रयोजन नहीं; नाग मर गया। नदी का जल रक्तमय हो गया और नाग का रुधिर नदी के जल में मिल गया। नाग की सब नागिनियाँ कृष्ण की पूजा करने आईं। वे कृष्ण की मनमोहिनी मूर्ति का अमृत पान करना चाहती थीं। कृष्ण नदी से बाहर निकले, आश्चर्य-चकित होकर उनके सम्बन्धियों और मित्रों ने उन्हें देखा, जैसे उनके प्राण लौट आये हों। अपने प्यारे कृष्ण को पाकर, अपने प्रेमपात्र को फिर अपने बीच में देखकर वे ऐसे प्रसन्न हुए कि उनके उल्लास की कोई सीमा न रही। इस कहानी के दोहरे अर्थ हैं। यह मानो उनके लिए एक शिक्षा-प्रद पाठ है, जो अपनी आत्मा में सत्यता का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं।

कथा में यमुना नदी चित्त की प्रतीक है। मन को झील की उपमा दी गई है। अब जो कोई कृष्ण बनना चाहता है (कृष्ण-शब्द देवता, ईश्वर का अर्थवाचक है), जो कोई खोये हुए स्वर्ग को फिर पाना चाहता है, उसे अपने आप ही में गम्भीर गोता लगाना होगा।

अपने चित्त की झील में गहरा उतरना पड़ेगा, उसे अपने ही स्वरूप में गहरी डुबकी लगानी होगी। तली में पहुँचकर उसे विषधर नाग का, राग-द्वेष और इच्छा के ज़हरीले साँप का, दुनियादारी में फँसे हुए मन-रूपी विषधर भुजंग का सामना करना होगा। उसे उसका मर्दन करना होगा। उसके फणों का विनाश करना होगा। उसके अनेक शिरों को ठुकराना होगा। उसको वश में करके नष्ट करना होगा। तात्पर्य यह कि साधक को सब से पहले अपने मन की झील को साफ करना चाहिए। अपने मन को सब प्रकार के विकारों से निर्मल कर लेना चाहिए। अच्छा, मन निर्मल करने की विधि क्या है? विधि वही है, जिसका कृष्ण ने अनुसरण किया था। उसे अपनी बाँसुरी के द्वारा ॐ मंत्र बजाना होगा। उसे उस बाँसुरी के द्वारा उस दिव्य, उस कल्याण-कारी गीत को गाना होगा।

अब, आइये, देखिये—यह बाँसुरी क्या चीज़ है? साधारणतः यह केवल एक तुच्छ वस्तु मानी जाती है। बाँसुरी की ओर ध्यान से देखो। भारतीय कवि उसे बड़ा महत्व देते हैं। ऐसा कौन सा महान् काम मुरली ने किया है, जो उसे इतना ऊँचा पद मिला? किस महान् कर्म के बल से बाँसुरी ने इतना ऊँचा आसन पाया? कृष्ण पूजनीय थे, महाशक्तिशाली सम्राटों के प्रेम-भाजन थे, सुविशाल भारत में सहस्त्रों सुन्दरियाँ उनकी उपासना करती थीं। कृष्ण परमप्रिय थे, शक्तिशाली थे, प्रेम की मूर्ति थे। बड़े-बड़े महाराज और सम्राट् कृष्ण की दया दृष्टि के भिखारी रहते थे। वही कृष्ण इस बाँसुरी को क्यों चूमते थे? ऐसे गौरवमय स्थान पर उस बाँसुरी को किसने पहुँचाया? बाँसुरी का उत्तर था—"मुझ में एक गुण है, अच्छी बात है, बड़ी अच्छी बात है। मैंने अपने आप को अन्य पदार्थों से ख़ाली कर लिया है।"

बाँसुरी शिर से पैर तक ख़ाली, पोली होती है। उसने कहा—"मैंने अपने को अनात्म से खाली कर लिया है।" इस प्रकार कथा के

अनुसार मुरली को अधरों से लगाने का अर्थ है मन को शुद्ध करना, मन को परमात्मा में लगाना, हर एक वस्तु को परमात्मा के, यार के चरणों में भेंट करना। अपने सच्चे दिल से त्याग करो। देह पर कोई दावा न रक्खो; सारी स्वार्थपरता, सारे स्वार्थ-पूर्ण सम्बन्ध, मेरे और तेरे के सभी विचार त्याग दो। इनसे ऊपर उठो। ईश्वर का आराधन करना, उसका इस तरह पर आराधन करना जिस तरह पर कोई दुनियादार आशिक़ अपने माशूक़ से प्रेम करता है। सच्ची आत्मा के अनुभव के लिये उसी तरह उत्सुक होना जिस तरह पर दुनियादार आदमी उस वस्तु के लिए विकल और लालायित होते हैं, जो उन्हें बहुत दिनों से नसीब न हुई हो। केवल परमेश्वर के लिए लालायित होना, सत्य के लिये उत्कट इच्छा करना, अपने परम स्वरूप का आनन्द लेने के लिए उत्सुक होना, चित्त को ऐसी अवस्था में लाना ही बाँसुरी को ओठों में लगाना है। मन की इस दशा में, चित्त की इस शान्ति में, ऐसे शुद्ध अन्तःकरण से ॐ मंत्र का उच्चारण करो, पवित्र ॐ अक्षर का गान आरम्भ करो। बस, यही है बाँसुरी में संगीत की साँस डालना। अपने सम्पूर्ण जीवन को बाँसुरी बना डालो। अपने समग्र शरीर को बाँसुरी बना दो, उसे स्वार्थपरता से ख़ाली कर दो और उसे ईश्वर के श्वास से भर दो।

ॐ का उच्चारण करो, जप करो और जपते समय अपने मन की झील के भीतर वह अन्वेषण शुरू करो। अनेक जीभों-वाले विषैले साँप को ढूंढ़ निकालो। संसार की अनेक ज़रूरतें, सांसारिक प्रवृत्तियाँ और स्वार्थपूर्ण कामनाएँ ही मानो इस ज़हरीले साँप के शिर, जिह्वा और विषदन्त हैं। ॐ अक्षर जपते हुए उन्हें एक-एक करके धूल में मिला दो। अपने पैरों से उन्हें कुचल डालो। एक-एक करके छाँट डालो, उन्हें जीत लो और नाश कर डालो।

शुद्ध आचरण का निर्माण करो, अपने चरित्र को शुद्ध करो। निश्चयों

को दृढ़ करो, प्रबल प्रतिज्ञाएँ और गंभीर संकल्प करो, इसलिए कि तुम झील से बाहर आओ ! जब तुम झील से बाहर आओ, तब विषाक्त जल तुम्हें विषलिप्त न करने पाये। इसलिये कि जो कोई उस पानी को पिये, उसे ज़हर न चढ़े। उस जल को पूरी तरह साफ़ करके चित्त-रूपी झील से बाहर आओ। चाहे लोगों का तुम से मतभेद हो, वे चाहे तुम्हें सब तरह की मुसीबतों में डालें, वे भले ही तुम्हें बदनाम करें, किन्तु उनकी रीझ और खीझ, उन की धमकियों और मधुर वचनों के होते हुए भी तुम्हारे चित्त की झील से दिव्य, निर्मल, ताज़े जल के सिवाय और कुछ नहीं निकलना चाहिए। तुम्हारे भीतर से सदैव अमृत का स्रोत बहना चाहिए जिससे तुम्हारे लिए स्वार्थबुद्धि वैसे ही असम्भव हो जाय जैसा ताज़े चश्मे के लिए उन्हें विषलिप्त करना जो उसका पानी पीते हैं। हृदय को विमल करो, ॐ अक्षर का गान करो, दुर्बलता के सब स्थानों को चुन-चुनकर जड़ से उखाड़ दो। सुन्दर चरित्र का निर्माण कर विजयी होकर निकलो। मनोरागों का सर्प नष्ट हो जाने पर, इच्छित पदार्थों को तुम उसी तरह अपनी उपासना करते पाओगे, जिस तरह पर नाग की नागिनियों ने नदी-तल में श्रीकृष्ण की पूजा की थी। नाग के नाश होने पर नागिनी तुम्हारी सेवा करेगी।

अपने अभ्यास के लिए एक मानचित्र बनाओ। और उस मानचित्र में साधारण पापों तथा त्रुटियों की तालिका बनाओ। इस नक्शे के खिंच जाने पर आप सप्ताह के किसी दिन से कार्य आरम्भ करें। यदि किसी दिन आपको लोभ या शोक से पीड़ा पहुँची हो, तो आप सीधे लोभ या शोक शीर्षक ख़ानों में उस तारीख़ के सामने (×) चिह्न बना दें, और इसी तरह पर अपनी अन्य त्रुटियों को चिह्नित करते रहें। इसी निजी रोज़नामचा के द्वारा आप अपनी त्रुटियों को अपने सामने ला सकते हैं, और अपनी दुर्बलताओं को सदा अभिमुख रखकर उन्हें परास्त

राम यह सिफ़ारिश नहीं करता कि ये चिह्न केवल मानचित्र में ही बने रहें। आज यदि तुमसे कोई दोष बन पड़ता है, तो तुम अपने प्रति सच्चे होकर आज ही नक्षत्राकार चिह्न बना दो। दूसरे दिन सवेरे या जिस समय तुम्हें सुभीता हो, दरवाज़ा बन्द कर लो, और बिलकुल अकेले बैठकर अपने सामने नक़शा खोल कर बैठो। उसमें तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि तुम लोभ या शोक से अथवा किसी अन्य दुर्गुण से दब गये थे। बस, अब अपने आप को उपदेश देना शुरू करो।

इस देश में तुमने दूसरों के अनेक उपदेश सुने हैं। अपने समय के चाहे सब से महान् वक्ता आ जायँ; नहीं, चाहे स्वयं ईसा और परमेश्वर भी आकर व्याख्यान दें, किन्तु दूसरे के उपदेश से तब तक कोई लाभ नहीं हो सकता, जब तक तुम अपने आपको उपदेश करने को उद्यत नहीं होते। वही अपने को उन्नत कर सकता है, जो स्वयं अपने को उपदेश देता है। तुम जानते हो कि तुम शोक के वशीभूत हुए थे। अब इस भावना की परीक्षा करो और इसके लक्षणों तथा पूर्व-लक्षणों को स्थिर करो। शोक के वश में तुम क्यों और कैसे आ गये थे? कारण निश्चय करो और तब ठीक-ठीक दवा करो। उसी समय किसी उपदेशात्मक पुस्तक का पाठ करो, जैसे भगवद्गीता, इंजील या इमर्सन की रचनाएँ अथवा कोई भी ऐसी पुस्तक पढ़ो, जो शोक के गर्त से तुम्हें ऊपर उठानेवाली हो। इनकी सहायता से तथा अपने उपदेशों और विचारों के मनन से उस भावना को सदा के लिए अपने से निकाल बाहर करने का यत्न करो। यदि उस समय तुम्हें इसका पूर्ण निश्चय हो जाय कि तुमने विजय पा ली है और तुम फिर कभी न हारोगे, चाहे तुम पर विपत्ति का पहाड़ ही क्यों न आ टूटे, जब तुम्हें ऐसा विश्वास हो जाय कि तुमने उसे अपने पैरों से कुचल दिया है, जब तुम्हें अपनी जीत का पूर्ण निश्चय हो जाय, तब उस नक्षत्राकार चिह्न को मिटा दो। बस, तुम मुक्त हो। फिर भूत-काल के लिए अपने

आपको धिक्कारना क्यों ? निर्जीव भूत-काल तो स्वयं अपना मुर्दा आप दफ़न करता रहेगा ।

इसी प्रकार एक-एक करके इन दोषों को ठीक करो, हर एक के लक्षण और पूर्व-लक्षण स्थिर करो, फिर अपने आपको उपदेश दो । यहाँ इस प्रकार के लक्षण और पूर्व-लक्षण ठीक करने से पहले तुम में से हर एक को अपने आपको उपदेश देना होगा । हर एक को अपना काम आप ही करना होगा । शांति से बैठ जाओ और जिस बात से तुम्हें पीड़ा पहुँच रही हो, उसका ध्यान करो और ध्यान करते समय ॐ का उच्चारण करो, गायन करो । जबओंठ उच्चारण करते हों, जब वाणी पवित्र मंत्र जपती हो, जब तुम अपनी प्रतिज्ञाओं के पालन के लिए दृढ़ संकल्प करते हो, तब अनन्त कल्याणकारक स्वर्गीय आशीर्वाद तुम्हें स्वतः प्राप्त होता है । तुम भीतर से शक्ति का अनुभव करोगे । तुम्हारे इन्हीं मनोरोगों को कथा में हज़ार फनोंवाले नाग से उपमा दी गई है । उन्हें एक-एक करके कुचल डालो । वास्तव में सभी त्रुटियों का एक सामान्य कारण है, हमारे सब दोषों का एक सामान्य आधार है । और वह है अज्ञान—सब प्रकार का अज्ञान, विशेषतः शुद्ध आत्मा का अज्ञान, सच्ची आत्मा का अज्ञान ।

लोग अपने को शरीर से अभिन्न मानते हैं, उसके आस-पास सब प्रकार के सामान जमा करते हैं, और बाहर के सुखों को प्राप्त करना चाहते हैं । वह शरीर से अनन्य हो गये हैं, इसीलिये शोकाकुल या दुःखित होते हैं, और होने योग्य भी हैं ।

शरीर से ऊपर उठो । यह जानो और अनुभव करो कि तुम अनन्त परमेश्वर, परमात्मा हो । फिर संसार के राग या लोभ से तुम कैसे प्रभावित हो सकते हो ?

प्रकृति के साधारण नियमों का अज्ञान, सत्य आत्मा के सामान्य अज्ञान का एक विभाग मात्र है, यही अज्ञान लोगों को रोगी

और दुर्बल बनाये हुए है। उसी के अनुसार प्रकृति का एक अटल और परम पवित्र नियम है, जो किसी प्रकार टाला नहीं जा सकता। वह नियम, क़ानून, इस प्रकार है।

कोई भी पाप करो, कोई भी शरारत करो, अपने चित्त में किसी भी प्रकार के अन्याय को आश्रय दो, ये बुरे कर्म, ये घोर पाप चाहे तुम ऐसे स्थान में क्यों न करो, जहाँ तुम्हें निश्चय हो कि कोई भी तुम्हें पकड़े या देखेगा नहीं, जहाँ कोई भी तुमसे जवाब तलब न करेगा, बुराई के ये बीज चाहे गुप्त-से-गुप्त स्थान में बोओ, वह स्थान चाहे क़िले की तरह सुरक्षित ही क्यों न हो; पर प्रकृति के अत्यन्त कठोर, निर्दय, अमोघ और अपरिहार्य क़ानून के अनुसार तुम्हें ब्याज सहित अपने कर्मों का मूल्य चुकाना होगा, क्योंकि बुरे कर्मों का परिणाम कभी शुभ नहीं हो सकता। बुरे कर्मों के लिये तुम्हें पीड़ा और क्लेश अवश्य भोगना पड़ेगा। पाप का पुरस्कार मृत्यु है।

लोग इस तथ्य को एक सामाजिक सदाचार-सम्बन्धी क़ानून मानते हैं और कहते हैं कि इस में गणित-शास्त्र के नियमों-जैसी शक्ति नहीं होती। वे कहते हैं कि इसमें गणित-शास्त्र की निश्चयात्मकता नहीं है। ऐसा समझने वाले सचमुच भ्रान्ति में हैं। अत्यन्त निर्जन गुफ़ाओं में भी कोई पाप करो और तत्क्षण तुम्हें यह देखकर आश्चर्य होगा कि तुम्हारे पैरों तले की घास तक निर्भय होकर तुम्हारे विरुद्ध गवाही दे रही है। समय समय पर तुम देखोगे कि दीवारों और वृक्षों तक में ज़ुबानें लग जाती हैं और वे बोलने लगते हैं। तुम ईश्वर को, प्रकृति को धोखा नहीं दे सकते। यह एक सत्य है, यह एक अटल नियम है। हम केवल हृदय के अन्दर पाप की बात विचारते हैं, और बाहरी दुनिया में हम अपने आप को अनर्थ-कर एवं पीड़ादायक परिस्थितियों से घिरा हुआ पाते हैं, तरह-तरह की कठिनाइयाँ और दिक़्क़तें हमारे सामने आती हैं। ऐसी हालत में जिन्हें अपनी विपत्तियों के असली कारण का ज्ञान नहीं होता, वे परिस्थिति को

दोष देते हैं, वे अपने आस-पास की वस्तुस्थिति से लड़ाई ठान बैठते हैं, वे अपने नातेदारों, मित्रों और साथियों पर क़ानूनी मुक़द्दमे चलाते हैं। किन्तु यह एक दैवी क़ानून है, जिसकी बाज़ारों में और जंगलों में, संसार के कोने-कोने में घोषणा की जानी चाहिए कि "ईश्वर की आँखों में धूल झोंकने का यत्न करने से मनुष्यों को स्वयं अन्धा होना पड़ेगा, आँखों से हाथ धोना पड़ेगा।"

प्राकृतिक नियम या दैवी विधान का आदेश है कि तुम सदैव पवित्र रहो। अपवित्रता को आश्रय देने से तुम्हें उसका दुष्परिणाम भोगना पड़ेगा। इन आध्यात्मिक क़ानूनों पर हमें एक-एक करके विचार करना होगा और हम गणित-शास्त्रीय निश्चयात्मकता के साथ उन्हें सिद्ध करेंगे। एक बार जब कोई मनुष्य इन आध्यात्मिक नियमों को समझ जाता है, तब फिर उसके लिये स्वार्थपूर्ण कामनाओं की ओर झुकना असम्भव हो जाता है। अपनी अभिलाषाओं को वश में कर लेने के बाद मन को जितनी देर तक चाहो उतनी देर तक एकाग्र कर सकते हो।

अपने मन को जीतने के लिये क्या उपवास करना आवश्यक है?

उपवास के सम्बन्ध में राम का कहना है कि न तो भूखे मरो और न अधिक खाओ। दोनों अतियों (extremes) से बचना होगा, "अति सर्वत्र वर्जयेत्"। कभी-कभी उपवास स्वाभाविक होता है, हमें अपने अन्दर भोजन न करने की स्वाभाविक इच्छा जान पड़ती है, उस समय भोजन करना पाप है। हृदय की ऐसी ही स्वाभाविक वृत्तियों को मानना चाहिए। किन्तु कभी-कभी आन्तरिक आत्मा तुमसे आहार ग्रहण करने के लिए कहती है, तब भोजन न करना पाप है। तात्पर्य, अपनी सहज वृत्तियों का अनुसरण करो।

हमें सहायता के रूप में उपवास करना चाहिए, किन्तु हमें उसका दास न बन जाना चाहिए। लोग प्रायः व्रत करते हैं, क्योंकि वे उसके लिए बाध्य किये जाते हैं। वे स्वेच्छा से उपवास नहीं करते, गुलामों की

भाँति आज्ञा पालन करते हैं। राम गुलामी का अनुमोदन नहीं करता ! उपवास के सम्बन्ध में (भारत का रिवाज पूछो, तो) भारत में भी कुछ लोग उपवास करते हैं, और वहाँ ऐसी विशेष तिथियाँ हैं जिनमें ख़ास तौर पर विशेष प्रकार का भोजन एक बँधी हुई मात्रा में ग्रहण किया जाता है। पूर्णमासी और प्रतिपदा इनमें मुख्य हैं।

पूर्णमासी के दिन भारत में लोग ऐसा भोजन करते हैं, जिससे पेट भारी न हो, और उस दिन वे ख़ास तौर पर मन की एकाग्रता का अभ्यास करते हैं, क्योंकि वह दिन विशेषतया ध्यान के अनुकूल समझा जाता हैं। यदि तुम इसे अपने अनुभव से प्रमाणित करने की कोशिश करो, तो तुम्हें सत्यासत्य का पता चलेगा। उस दिन ऐसा भोजन ग्रहण किया जाता है, जिससे मन की स्थिरता में विघ्न न पड़े। इसी प्रकार प्रतिपदा के दिवस और रात्रि में नैसर्गतः एक ऐसा गुण विद्यमान है जो मन की एकाग्रता सम्पन्न कराने में विशेषतया हितकर सिद्ध होता है।

किन्तु सच्चे उपवास का अर्थ है कि हम अपनी व्यक्तिगत स्वार्थ-पूर्ण इच्छाओं और क्रिया-कलापों से मुक्त हो जायँ। हमारा जीवन उनका पोषण करनेवाला न हो, वरन् उनका शोषण होकर हम सर्वथा उनसे स्वतंत्र हो जायँ।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

५

स्वर्ग का साम्राज्य अथवा शांति-राज्य

[१६ दिसम्बर, १६०२ को (हर्मिटिक) ब्रदरहुड हाल, सन-फ्रांसिस्को में दिया हुआ व्याख्यान]

स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे अन्तर में है। तुम उसे कैसे प्राप्त कर सकते हो?

इस विषय में एक बड़ी सुन्दर कहानी है। उससे प्रकट होता है कि हम अपने अन्तर का स्वर्गीय साम्राज्य कैसे प्राप्त कर सकते हैं। वह कथा यों है कि एक समय एक दैत्य वेदों को लेकर समुद्र की तह में घुस गया।

'वेद' शब्द के दो अर्थ हैं। मूल अर्थ है ज्ञान, स्वर्ग का साम्राज्य। दूसरा अर्थ है हिन्दुओं का अत्यन्त पवित्र धर्मग्रन्थ।

वेदों को समुद्र की तह में ले जाने वाले इस राक्षस का नाम शंखासुर था, जिसका अर्थ, शब्द-व्युत्पत्ति के अनुसार, शंख का दैत्य अथवा शंख में रहनेवाला कीड़ा होता है।

तब वेदों के उद्धार के लिए, ज्ञान के भण्डार को लौटा लाने के लिए, ईश्वर ने मछली का अवतार लिया, और वेदों को पुनः संसार में प्रकट किया।

बच्चे जब इस कथा को पढ़ते हैं, तो अक्षरशः ज्यों-का-त्यों अर्थ लगाते हैं। साधारण लोग भी इसे अक्षरशः ग्रहण करते हैं। किन्तु कथा का एक गम्भीर और गुह्य अर्थ भी है। कथा एक व्यापक सत्य को समझाने के लिये कही गई है।

शंख में रहनेवाले कीड़े से वेदों को लौटा लाने के लिए ईश्वर ने मत्स्यावतार लिया। ईश्वर ने मछली का अवतार लेकर समुद्र की तह में दैत्य या कीड़े से युद्ध किया, और उसका बध किया। इसका क्या मतलब था? मछली एक समुद्रीय जन्तु है, और शंख में भी समुद्र के एक प्राणी का वास होता है। ईश्वर ने, ब्रह्म-स्वरूप ने, मछली के रूप में समुद्र के कीड़े से संग्राम किया। कीड़ा शंख से निकाल बाहर किया गया, तब समुद्र की लहरों ने शंख को बाहर किनारे लगा दिया। लोगों ने उसे उठा लिया। शंख बजाया गया और उससे ऊँ ऊँ ऊँ की ध्वनि निकली। यही वेद है। इसी अर्थ में वेद ऊँ समुद्र की तह से ऊपर लाया गया।

आख्यायिका कहने वाले का अभीष्ट इस पवित्र मंत्र ऊँ के महत्त्व पर विशेष ज़ोर देना था। उसे यह प्रकट करना अभिप्रेत था कि यह पवित्र अक्षर ऊँ सम्पूर्ण जगत् के ज्ञान की इतिश्री है। यही सम्पूर्ण वेद है। अल्प से अल्पतम परिधि में, घन-से-घन रूप में, यही शंख में समाया हुआ स्वर्ग का साम्राज्य **ओम्** रूप है। यह कहानी का वास्तविक प्रयोजन था।

हिन्दू अपने सभी शुभ कार्यों एवं महत्वपूर्ण अवसरों पर शंख बजाते हैं। इस प्रकार वे मृत्यु, जन्म, समर वा पूजा के समयों पर ऊँ का उच्चारण करते हैं। वास्तव में सुखी है वह जो ऊँ में रहता-सहता चलता-फिरता और अपनी हस्ती रखता है।

अपने भीतर की परम निधि को पाने के लिए, स्वर्ग के साम्राज्य का ताला खोलने के लिये, इसी ऊँ की ताली को काम में लाना होगा।

यूरोप-अमेरिका के लोग तब तक किसी बात को नहीं स्वीकार करना चाहते, जब तक वह उनकी बुद्धि को जँचती नहीं। किन्तु संसार के तर्कों से चाहे इस मंत्र का गुण हम सिद्ध न कर सकें; फिर भी, ठीक तरह पर इसका उच्चारण करने से यह मंत्र जो प्रबल प्रभाव मनुष्य के चरित्र पर डालता है, वह अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों

में दुनिया की निधियों को हमारे अधीन कर देने में, हमारे भीतर के भेदों को खोलने का जो गुण इसमें है, उससे इनकार नहीं किया जा सकता। इस कथा के द्वारा यह प्रकट करना भी कथा कहने वाले का एक प्रयोजन हो सकता है कि हिन्दुओं के पवित्र धर्म-ग्रंथों का सम्पूर्ण ज्ञान उस समय प्रादुर्भूत हुआ था जब उनके लेखक इस अक्षर ॐ को जपते-जपते परमानन्द में डूब गये थे। यह मंत्र सम्पूर्ण ज्ञान का बीज है। अब विभिन्न पहलुओं से इस मंत्र की महत्ता आपके सामने रखी जायगी। इस मंत्र का महत्त्व इसलिए दिखलाना ज़रूरी है कि लोग इसे पूरे हृदय से अपनावें।

सब से पहले, ॐ मंत्र किसी विशेष भाषा का नहीं है। ऐसा समझकर कि यह संस्कृत-शब्द है और अन्य किसी भाषा में नहीं है, इसे अस्वीकार न करो। यह परमेश्वर का नाम है। यह अक्षर तुम्हें अन्तर से प्राप्त होता है, कोई तुम्हें इसकी शिक्षा नहीं देता। यह जन्म के साथ तुम्हें मिलता है। बच्चे की चीख़ में ऊँ-ओं-ओं की ध्वनि से, जो ओम् का ही विकृत रूप है, इसकी अनोखी समानता है। ओम् शब्द हर एक बच्चे के पास उसके अन्तर से आता है। ओम् लिखने का ठीक ढंग अ-उ-म् है। संस्कृत-व्याकरण के नियमों के अनुसार अ, और उ की संधि होकर 'ओ' बन जाता है। गूंगा भी अ, उ और म् की आवाज़ निकाल सकता है। इस तरह ओम् पूर्णरूप में या खंड-रूप में हर एक के द्वारा स्वतः दुनिया में लाया जाता है। यह एक अत्यन्त स्वाभाविक ध्वनि है, जो हर किसी को अपने आप सूझ पड़ती है। जब लड़के गलियों में ख़ुशी मनाते हैं, तब स्वभावतः उनका हृदय में न समानेवाला हर्ष ओ की लम्बी, भरी पूरी ध्वनि में प्रकट होता है, जिसे अधूरा ओम् ही कहना चाहिए।

यह ध्वनि सब भाषाओं में होती है। संस्कृत, फ़ारसी, अँग्रेज़ी, जापानी——सभी भाषाओं में यह न्यूनाधिक रूप में विद्यमान है। जब लोग अपने आपे में नहीं होते, उन सभी अवसरों पर इस ओ ध्वनि का व्यव-

हार किया जाता है। जब कोई बड़ा उल्लास होता है, जब लोग आनन्द-मग्न होते हैं, तब यह ध्वनि स्वभावतः उनके मुख से निकलती है। जब लोग बीमार पड़ते हैं या और कोई मुसीबत होती है, जब उन्हें मर्मभेदी पीड़ा होती है, तब उनके ओठों से कौन-सी ध्वनि निकलती है? ओह, ओह, उम्, जो ओम् का अपभ्रंश-मात्र है। हिब्रू, अरबी, अँग्रेज़ी—प्रार्थनाओं का अन्त 'आमीन' से होता है, जिसका ओम् से अत्यन्त अनोखा सादृश्य है। यूनानी वर्णमाला में अंतिम अक्षर औमेगा है, इससे भी ओम् ध्वनि को प्रधानता मिलती है।

यह ध्वनि हर एक व्यक्ति को क्यों सूझती है? बीमारी में क्यों हर एक के ओठों से यही ध्वनि निकलती है, वह चाहे यूरोपीय, अमेरिकन, हिन्दू, ईरानी, जापानी या किसी भी फ़िरक़े का क्यों न हो? हिन्दू उत्तर देता है—यह ध्वनि उस सुन्दर वृक्ष के तुल्य है, जो प्रचण्ड सूर्य के ताप से झुलसे हुए रोगी मनुष्य को शीतल छाया प्रदान करता है। जैसे स्वभावतः रोगी मनुष्य किसी फैले हुए वृक्ष की शीतल छाया ढूंढ़ता है, वैसे ही हर एक व्यक्ति व्यथा या बीमारी की हालत में स्वाभावतः इस **ओम्** अक्षर का आश्रय लेता है। क्यों? क्योंकि इस ध्वनि से उसे कुछ चैन-सा मिलता है। हम देख सकते हैं कि सब दशाओं में यह ध्वनि स्वभावतः आराम पहुँचाती है। रोगियों को इस ध्वनि के उच्चारण से आराम मिलता है। यदि दुखी और थके-माँदे को यह ध्वनि आराम पहुँचा सकती है, तो क्या यह शान्ति और एकता देनेवाली न होगी, यदि आप ठीक तरह से इसका उच्चारण करें? हम इसे 'प्रणव' कहते हैं और इसे उस वस्तु का वाचक समझते हैं, जो हमारे समस्त जीवन में व्याप्त है अथवा जो हम में प्राण या श्वांस का संचार करती है। प्रत्येक प्राणी इस ध्वनि को निकालता है, यह उसके श्वांस के साथ मिलकर निकलती है। यदि तुम इतनी ज़ोर से नासिका के द्वारा श्वांस लो कि उसकी आवाज़ सुनाई पड़े, तो तुम देखोगे कि उस आवाज़ का यदि कोई

परिस्फुट शब्द हो सकता है, तो वह **सोहम्, सोहन्** जैसा होगा । यह ध्वनि सब की साँस में है । **सोहम्** भी इसी प्रकार प्राकृतिक ध्वनि है ।

संस्कृत-व्याकरण दुनिया की अन्य दूसरी व्याकरणों से अधिक उन्नत है । उसने सब ध्वनियों और शब्दों का पूर्ण विश्लेषण किया है । म् अक्षर व्यञ्जन है । किन्तु यह व्यञ्जन अनुनासिक है । व्याकरण में सिद्ध किया गया है कि म् एक ऐसा व्यञ्जन है जिसकी सीमा स्वर से सटी हुई है । ओ और अ सब व्याकरणों के अनुसार स्वर हैं । स् और ह् व्यञ्जन हैं । व्यञ्जनों को निकाल दो, तो हमें ओ, अ, म् अर्थात् **ओम्** मिलता है ।

यह आप जानते हैं कि स्वर स्वतंत्र ध्वनियाँ हैं और व्यञ्जन परतंत्र ध्वनियाँ, जो अकेले अपने सहारे पर नहीं टिक सकतीं । उदाहरण के लिए क् एक व्यञ्जन है । तुम उसे 'के' कहते हो, संस्कृत में वह 'क्' कहलाता है । मूल ध्वनि में तुम्हें इ या ए सरीखा एक स्वर मिलाना पड़ता है, तभी वह उच्चारण के योग्य बनता है ।

व्यञ्जन इस दुनिया में नाम और रूप के स्वरूप को स्पष्ट करते हैं । इस दुनिया के सब नाम और रूप व्यञ्जनों की तरह पराश्रित हैं । उन के पीछे यदि परम सत्यता न हो, तो क्या उनमें से एक भी अपने आप ठहर सकता है ? सब दृश्य नाम और रूप-मय हैं, जिनका उच्चारण आधारभूत स्वर-रूप सत् या सत्यता के बिना नहीं हो सकता । आप उस सत्य को चाहे परमेश्वर कहें, चाहे न जानने के योग्य तत्व कहें, या जो कुछ कहना पसन्द करें वह कहें किन्तु आधारभूत पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द स्वतः सिद्ध है, जिसकी सूचना ह में यथाक्रम अ, उ और म् से मिलती है । सोहम् में जो स और ह व्यञ्जन हैं, वे दृश्य व्यापारों के नाम, रूप और आकृति को स्पष्ट करने का काम देते हैं । और अन्तर्वर्ती ॐ मूलस्थ आधारभूत सत्यता को दर्शाने अथवा स्पष्ट करने का काम देता है ।

यदि हमारे पास अनेक आकृतियों के खाँड के खिलौने हों, कुछ कुत्ते की शक्ल के, कुछ बैल की शक्ल के, कुछ बाघ की शक्ल के, कुछ मनुष्य की शक्ल के, तो वे एक-दूसरे से भिन्न अवश्य हैं किन्तु सारा भेद केवल आकृतियों, रूपों तथा नामों का है। यथार्थतः एक ही पदार्थ के बने होने के कारण वे सब-के-सब वही खाँड-ही-खाँड हैं।

समुद्र में जाओ। वहाँ तुम्हें जहाँ-तहाँ तरंगें, जहाँ-तहाँ हिलकोरें दिखाई देंगी, उनके डील-डौल और शक्ल में भेद होगा, किन्तु उनके अधिष्ठान की असलियत को देखो, तो वह एक ही समुद्र है। वे सब एक ही हैं, वे सब पानी ही पानी हैं। भेद तो केवल आकार और रूप में है।

एक हीरा लो! वह इतना चमकीला, इतना जगमग, इतना तेजपूर्ण और इतना कड़ा है कि लोहे को भी सरलता से काट सकता है। इसके बाद कोयला लो, जो इतना मुलायम होता है, कि सहज ही काग़ज़ पर निशान बना देता है। वह महा कुरूप, महा मैला, बिलकुल निकम्मा होता है, किन्तु रसायन-शास्त्री हमें बतलाते हैं, दोनों की असलियत में कोई भेद नहीं है। दोनों ख़ालिस कार्बन हैं, दोनों में कुछ भी भेद नहीं है। फिर बाह्य भेद का कारण क्या है? भेद आकार और प्रकार में है। कार्बन के परमाणुओं की स्थिति और शक्ल एक से दूसरे में भिन्न है। भेद केवल रूप में है।

इसी तरह हिन्दू-शास्त्र के अनुसार इस संसार के सब पृथक्-पृथक् विभेद केवल नाम और रूप के कारण से हैं। यदि तुम गहरी तह में जाओ, वस्तुस्थिति के भीतर देखो, यदि तुम सब नामों और रूपों के अधिष्ठान-स्वरूप तत्त्व की छानवीन करो, तो तुम देखोगे कि सब का आधार एक ही निर्विकार, अव्यय तत्त्व है, और वह तत्त्व अपना आधार आप ही है। उस तत्त्व की तुलना स्वर-ध्वनियों से की जा सकती है, और नाम तथा रूप की तुलना व्यंजन-ध्वनियों से करना ठीक है। इस प्रकार सोहम् के स् और ह् को छोड़ देने पर, जो नाम और रूप के द्योतक

हैं, जो पराश्रित हैं, केवल एक असलियत शेष रह जाती है जो एकाक्षर **अ-उ-म्—ओम्** के द्वारा व्यक्त होती है। इस प्रकार **ओम्** वह असलियत है, जो तुम्हारी साँस में संचार करती है, जो विश्व की सम्पूर्ण साँस में मौजूद है, जो शक्ति-रूप से सम्पूर्ण भेदों, सब विभागों सम्पूर्ण पार्थक्य के पीछे है। **ओम्** उसी का अत्यन्त नैसर्गिक नाम है, उस सार-तत्त्व का अत्यन्त स्वाभाविक नाम है।

अध्यापक मैक्समूलर ने और उसके साथ दूसरे तत्त्वज्ञानियों ने भी सिद्ध किया है कि विचार और भाषा का वैसा ही नाता हैं जैसा कि एक ही सिक्के के मुख-भाग का उसके पृष्ठ-भाग के साथ होता है। एक के बिना दूसरा टिक नहीं सकता। क्या तुम इस पदार्थ को, इस मेज़ को, बिना इसका विचार किये देख सकते हो? क्या तुम किसी वस्तु को उसका विचार किये बिना अनुभव या धारण कर सकते हो? 'धारण' शब्द ही मानसिक विचार का सूचक है।

फिर, विचार और भाषा तो एक ही हैं। बिना भाषा के तुम सोच ही नहीं सकते। शिशु कोई भांषा नहीं जानता और उसका कोई विचार भी नहीं होता। बच्चे को सोचना शुरू करने दो। जब तक उसके पास भाषा न होगी, तब तक वह बिचार नहीं कर सकता। माता बच्चे के कानों में नाम फूंकती है, मानों नामों के अर्थ लड़के के हृदय में फूंके जा रहे हैं। माता के शब्दों के साथ अर्थ का वही सम्बन्ध है, जो सवार का घोड़े से होता है। अर्थरूपी सवार शब्दों के घोड़े पर चढ़कर बच्चे के अन्तःकरण में पहुँचता है।

भाषा के बिना हम विचार नहीं कर सकते। विचार और भाषा एक हैं, और यह हम पहले ही देख चुके हैं कि संसार और विचार भी एक ही हैं। इस प्रकार एक ओर भाषा और विचार एक हैं और दूसरी ओर विचार तथा संसार एक हैं। अतएव शब्द और संसार एक दूसरे के कुटुम्बी सिद्ध होते हैं। विचार के बिना इस संसार का कोई भी

पदार्थ नहीं देखा जाता। किसी पदार्थ को देखने का यत्न करो और आपके चित्त में उसकी धारणा का प्रवेश न हो, यह असम्भव है। वास्तव में, काले तख्ते को देखने वा मालूम करने का अर्थ ही है, काले तख्ते का विचार करना।

इस लोक के सभी पदार्थ तदनुरूप कल्पना के प्रतिरूप हैं। ख़याल के बिना इस दुनिया में कुछ भी नहीं देखा जाता, और भाषा बिना कोई ख्याल नहीं हो सकता। अतः दुनिया का भाषा से वही रिश्ता है जो एक सिक्के के मुख-भाग से पृष्ठ-भाग का होता है। इससे तुम्हें बाइबिल के इस वचन का वास्तविक तत्त्व या असली महत्त्व मालूम होता है कि "प्रारम्भ में शब्द था, शब्द ईश्वर के साथ था और शब्द ईश्वर था।"

अब, हम एक ही ऐसा शब्द या ध्वनि चाहते हैं जो समग्र संसार की प्रतिनिधि हो। हम कोई ऐसा शब्द चाहते हैं, जो विश्व को धारण करनेवाली शक्ति, सत्त्व, बल, नियामक तत्त्व या वास्तविक आधार का प्रतिनिधि बन सके।

सभी भाषाओं में हमें विभिन्न ध्वनियाँ मिलती हैं। एक वे जो कण्ठ से निकलती हैं दूसरी वे जो ओठों से निकलती हैं, कुछ और हैं जो तालु के पास मुख से निकलती हैं। किसी भी भाषा में ऐसी एक भी ध्वनि नहीं है जो वाचक इन्द्रियों के किसी ऐसे भाग से निकलती हो जो कण्ठ से नीचे हो। कण्ठ वाचक इन्द्रियों की एक सीमा है। और ओंठ दूसरी सीमा है। ओठों के बाहर से कोई ध्वनि नहीं निकलती।

यहाँ हमारे पास अ, उ, म् हैं। अ कंठ्य स्थानीय ध्वनि है। यह वाचक इन्द्रियों की एक सीमा से आती है।

उ ध्वनियों की परिधि के ठीक बीच से, वाचक स्थानों के मध्य स्थान तालु के निकट से निकलता है।

म् ध्वनि वाचक इन्द्रियों की अन्तिम सीमा ओष्ठ और नासिका से निकलती है।

इस तरह 'अ' ध्वनि की परिधि के प्रारम्भ का प्रदर्शक है, 'उ' मध्य का प्रदर्शक है, और म् अन्त का प्रदर्शक है। दूसरे शब्दों में **ओम्** सारे वाचक क्षेत्र को छाये हुए है। **ओम्, ओम्** अत्यन्त स्वाभाविक नाम है। यह सम्पूर्ण भाषा और फलतः सम्पूर्ण संसार का प्रतिनिधि है। यहाँ पर एक प्रश्न पैदा होता है—और भी बहुत सी ध्वनियाँ हैं, जो अ की तरह कंठ से निकलती हैं, इसी तरह उ और म् की भी सवर्गीय वा सजातीय अनेक ध्वनियाँ हैं। जो फिर कोई दूसरा कंठ्य-वर्ण उ वर्ग की किसी दूसरी ध्वनि से और किसी दूसरी सजातीय ओष्ठ्य-ध्वनि से मिलकर क्या ऐसा कोई दूसरा शब्द नहीं बनाया जा सकता जो सकल भाषाओं का प्रतिनिधित्व करे?

परन्तु उन सब ध्वनियों में, जिनका स्थान वही है जो उ का है, केवल उ ही ऐसी ध्वनि है जो सबकी स्वामी, अग्रवती, सम्राज्ञी कही जा सकती है। वह एक स्वर है, एक ऐसी ध्वनि है, जिसे हर एक बच्चा निकालता है; यहाँ तक कि गूंगे के पास भी वह होती है। वह दूसरों की शिक्षा से नहीं आती है, वरन् स्वतः प्राप्त होती है। फलतः अपनी श्रेणी की सर्वोत्तम प्रतिनिधि है। इसी तरह म् सब ओष्ठ्य वर्णों का सर्वोत्तम प्रदर्शक है। इसमें एक और विशेषता है। यह अनुनासिक है और श्वास-वाहक नासिका का सारा क्षेत्र भी ढक लेता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यदि कोई पूर्ण नाम हो सकता है, तो वह **ओम्** है। यह सब भाषाओं का प्रतिनिध वा प्रदर्शक है। यह संपूर्ण विचार का प्रतिनिधि है। यह अखिल विश्व का प्रतिनिधि है।

सम्पूर्ण वेदान्त, वरन् हिन्दुओं का सम्पूर्ण दर्शन-शास्त्र केवल इस ॐ अक्षर की व्याख्या है। **ओम्** समग्र विश्व को ढके हुए है। सारे संसार में एक भी पदार्थ ऐसा नहीं है, जो **ओम्** के बाहर हो। एक-एक करके तुम देख सकते हो कि भूतों के रहने के सभी लोक, सारा जगत् अस्तित्व की सभी अवस्थायें इस एक अक्षर **अ-उ-म्, ओम्** से ढकी हुई हैं।

ध्वनियाँ दो तरह की हैं :—स्पष्ट (लिखने के योग्य) और अस्पष्ट (लिखने के अयोग्य)। हम उन्हें ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक कहते हैं। संस्कृत के ये नाम अर्थों से भरे हुए हैं। वर्णात्मक के शाब्दिक अर्थ हैं "वे ध्वनियाँ जो लिखी जा सकती हैं।" ध्वन्यात्मक के अर्थ हैं वे "ध्वनियाँ जो लिखी नहीं जा सकती हैं।" सर्वसाधारण की भाषा वर्णात्मक होती है। वेदना (भावना) की भाषा ध्वन्यात्मक है। वह शब्दों में लिखी या अक्षरों से प्रकट नहीं की जा सकती।

एक मनुष्य हँसता है। क्या किसी लिखित भाषा में आप उसे प्रकट कर सकते हैं? क्या आप उसे काग़ज़ पर अंकित कर सकते हैं? एक मनुष्य रोता है। क्या आप उसे काग़ज़ पर अंकित कर सकते हैं? ये ध्वन्यात्मक हैं? हम देखते हैं कि ध्वन्यात्मक ध्वनियाँ या स्वाभाविक ध्वन्यात्मक भाषा एक विशेष उद्देश्य रखती है, जो वर्णात्मक से सिद्ध नहीं होता। मान लो कि आप में से कुछ लोग विदेश जाते हैं, या कोई विदेशी आप के देश में आता है, वह आपकी भाषा बोल या समझ नहीं सकता। उसे किसी वस्तु की ज़रूरत पड़ती है। कदाचित् वह कोई वस्तु मोल लेना चाहता है, आप उसकी बात नहीं समझते। शायद वह मनुष्य भूखा है, वह कुछ खाना चाहता है, उस की भाषा न समझने के कारण तुम उसकी ज़रूरतों पर ध्यान नहीं देते। वह मनुष्य चीख़ना और रोना शुरू करता है। अब तुम उसे समझते हो, अब तुम उसे देखते हो। वेदना की यह भाषा समझी जाती है, किन्तु वर्णात्मक या कृत्रिम भाषा केवल वही समझ सकते हैं, जो उसे सीखते हैं। स्वभाविक भाषा सब कहीं समझी जाती है।

तुम हँसना शुरू करते हो। सब समझ लेते हैं कि कोई हास्य-जनक या मनोरंजक बात तुम्हें दृष्टिगोचर हुई है अथवा तुम्हारे मन में प्रकट हुई है। यहाँ एक मनुष्य है जो कोई बाजा बजाता है, जैसे सारंगी; तुम उसके सुर, ताल जान लेते हो। संगीत की भाषा ध्वन्यात्मक है, और सभी कोई उसे समझता है।

शेक्सपियर ने "मर्चेंट ऑफ़ वेनिस (नाटक) में लिखा है—

"Therefore the poet
Did feign that Orpheus drew trees, stones and floods.
Since naught so stockish, hard and full of rage
But music for the time doth change his nature."

इसलिये कवि ने—

भूमिका बाँधी कि ऑरफियूस ने वृक्षों, पत्थरों और नदों को अपनी ओर खींच लिया था क्योंकि ऐसा जड़, कठोर और कोप-पूर्ण तो कोई हो ही नहीं सकता जिसकी प्रकृति संगीत द्वारा उस समय के लिए न बदल जाती हो।

संगीत की भाषा उस प्रकार की नहीं है जैसी हमारे विचारों की भाषा है। उसका एक ख़ास उपयोग है, उसमें मोहिनी-शक्ति है। विज्ञान चाहे सिद्ध कर सके या नहीं कि संगीत आप पर इतना मनोहर भाव क्यों डालता है, किन्तु वह तथ्य तो वर्तमान ही है। यदि विज्ञान इसे नहीं सिद्ध कर सकता, तो यह उसका दोष है। इसी तरह **ओम-ओम्** में ऐसी मनमोहिनी शक्ति, ऐसी पूर्णता, एक ऐसा गुण है जो तुरन्त उच्चारण करने वाले के मन को वश में कर लेता है, जो चटपट समस्त भावनाओं और समस्त विचारों को एकता की दशा में ले जाता है, जो आत्मा को शान्ति और विश्राम प्रदान करता है और जो मन को ऐसी दशा में पहुँचा देता है जिसमें उसकी परमेश्वर से अनन्यता हो जाती है। विज्ञान चाहे इसे समझा न सके, किन्तु यह एक तथ्य है जो निजी प्रयोग (अनुभव) से सिद्ध किया जा सकता है। विज्ञान को धिक्कार है! यदि वह इस पवित्र अक्षर **ओ३म्** की अमोघ शक्ति के इस स्पष्ट सत्य का विरोध करता है।

ओम्! ओम्!! ओम्!!!

६

प्रणव अथवा पवित्र अक्षर ॐ

[२२ दिसम्बर, १९०२ को हर्मिटिक ब्रादरहुड हाल, सनफ्रांसिस्को में दिया हुआ व्याख्यान]

उस दिन पवित्र ओम् मंत्र पर कुछ शब्द कहे गये थे और यह भी बतलाया गया था कि सात-आठ पाठों में भी यह विषय समाप्त नहीं किया जा सकता। इस पवित्र मंत्र पर ग्रन्थ-के-ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे जा चुके हैं और आज भी लिखे जा रहे हैं। वास्तव में चारों वेद, सम्पूर्ण वेदान्त, हिन्दुओं के समस्त पवित्रतम ग्रन्थ इसी ओम् पद के अन्तर्गत आ जाते हैं।

भारत में अनेक सम्प्रदाय हैं, किन्तु सभी सम्प्रदाय ओम् की हृदय से पूजा करते हैं। यहूदी, मुसलमान और ईसाई—सब अपनी प्रार्थनाओं का अन्त 'आमीन' से करते हैं। मुसलमान भी ऐसा करते हैं, यद्यपि वे शब्द का उच्चारण आमीन (Amen) न करके 'अहमीन' करते हैं।

अच्छा, तुम्हारी साधारण प्रार्थनाओं में 'आमीन' क्या काम करता है? जिस स्थान पर सम्पूर्ण वक्तृता का अन्त होता है, जहाँ सारी बातचीत समाप्त हो जाती है, जहाँ जीवात्मा द्रवीभूत होकर परमात्मा बनता है, वहीं पर इसका प्रादुर्भाव होता है। जब तक उस स्थान तक पहुँच नहीं होती, जहाँ पर सारी हस्ती पिघलकर परमात्मा में

लीन होने वाली होती है, तब तक आप हृदय की भाषा उड़ेलते रहते हैं। किन्तु जहाँ पर अविनाशी, अनिर्वचनीय, अकथनीय की प्राप्ति होती है, वहीं पर आमीन (तथास्तु) आता है। तो फिर यह आमीन क्या है? यह ओम् है, इसके सिवा कुछ नहीं। तुम्हारी सकल पवित्र प्रार्थनाओं में एमिन या आमीन का वही स्थान हैं, जो 'वेदान्त' शब्द के भाव द्वारा ठीक-ठीक व्यक्त होता है। इस प्रकार यह आमीन बहुत कुछ वेदान्त-सार अर्थात् **ओम्** के तत्त्व को ही प्रकट करता है।

वेदान्त का शब्दार्थ है 'ज्ञान का अन्त' 'वाणी का अन्त' अर्थात् वह स्थल, जहाँ पर सम्पूर्ण वाणी, सम्पूर्ण विचार रुक जाता है। इसी लिए हिन्दुओं में **ओम्** से समग्र वेदान्त प्रतिपादित हो जाता है। वेदों में जिस अर्थ में इस पद का व्यवहार है, वह भी अब तुम्हें बताया जायगा।

तांत्रिक लोग **ओम्** की अपनी निराली व्याख्या करते हैं। शैवों की अपनी स्वतन्त्र व्याख्या है, वैष्णवों की अपनी निजी टीका है, और शेष हिन्दू सम्प्रदायों के भी अपने-अपने विशेष अर्थ हैं। किन्तु जो अर्थ यहाँ बतलाया जाने वाला है, वह सार्वभौम है, उसे वेदान्त का आदि-स्रोत ही समझना चाहिए।

ओम् अ, उ, म् से बनता है। वेदान्त की शिक्षाओं के अनुसार 'अ' ध्वनि मानो भौतिक विश्व को, ठोस प्रतीत होनेवाली दुनिया को, प्रत्यक्ष जगत् को प्रतिपादन करती है। जो कुछ तुम जाग्रतावस्था में देखते हो, वह सब अ ध्वनि द्वारा व्यक्त होता है।

'उ' स्वप्न लोक के सारे अनुभवों को प्रतिपादित करता है। स्वप्न-जगत् के द्रष्टा और दृश्य, स्वप्नावस्था के कर्ता और कर्म—दोनों 'उ' ध्वनि से व्यक्त होते हैं। उ सूक्ष्म या मानसिक लोक का, प्रेतलोक का, स्वर्ग और नरक का सूचक है।

'म्' सुषुप्ति वा स्वप्न-हीन घोर निद्रावस्था का द्योतक है। यथार्थतः यह हमारे सम्पूर्ण अज्ञात जगत् का प्रतिपादन करता है। जाग्रतावस्था

में जो हमें अविदित रहता है अथवा जहाँ बुद्धि की पहुँच हो ही नहीं सकती; वह सब 'म्' द्वारा ही व्यक्त होता है।

इस तरह **ओम्** या **अ, उ, म्** मनुष्य के सम्पूर्ण त्रिविध अनुभवों को, सम्पूर्ण दृश्य जगत् को ढके हुए है। **अ, उ, म्** में दृश्यता के पीछे दृष्टापन का सूचक एक सामान्य तत्त्व है, जिसे अमात्रा कहते हैं। इस अमात्रा से हमें अविनाशी, निर्विकार, वास्तविक तत्त्व या त्रिविध व्यापारों में व्यापक और स्वतः संचारी परम पदार्थ की सूचना मिलती है। इस अमात्रा की किसी दूसरे व्याख्यान में पूर्ण व्याख्या की जायगी। अभी इस विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि **ओम्** सर्व का सूचक और प्रतिपादक है।

यूरोप और अमेरिका का सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान केवल जाग्रत-अवस्था के अनुभव पर ही अवलम्बित है और वह स्वप्नावस्था तथा सुषुप्ति वा गाढ़ निद्रावस्था के अनुभव पर कोई ध्यान नहीं देता। हिन्दू कहता है––"तुम अपूर्ण सामग्री लेकर विषय को प्रारम्भ करते हो। फिर तुम्हारा विश्व की समस्या का हल क्योंकर सही हो सकता है?"

पाश्चात्य दार्शनिक जाग्रत-अवस्था तक ही अपने को परिमित करते हैं। मिल, हेमिल्टन, बर्कले, स्पेंसर आदि सब के सब केवल जाग्रत-अवस्था में प्राप्त किये हुए अनुभवों को अपने आविष्कारों और अनुसंधानों का आधार बनाते हैं। अखिल शक्ति के तेज को या उसे आप चाहे जिस नाम से पुकारें, उसके मूल-स्रोत को वे केवल जाग्रत-अवस्था में ही खोजना चाहते हैं। किन्तु ख़ूब सोचिये, यदि आपको कोई गणित-शास्त्र का प्रश्न हल करने को दिया जाय और उसका परिणाम निकालने को कहा जाय, तो आपको पूरी कल्पना, सम्पूर्ण उपक्रम पर विचार करना होगा। निर्दिष्ट सामग्री के केवल एक भाग को लेकर आप किसी प्रश्न को कैसे सही हल कर सकते हैं? वेदान्त पूरी निर्दिष्ट सामग्री लेकर चलता है। यह निर्दिष्ट सामग्री त्रिविधि है, तुम्हारे सांसारिक अनुभव त्रिविधि हैं,

अतएव इन सब पर विचार होना चाहिए। जाग्रत-अवस्था का जगत् दूसरी दोनों अवस्थाओं में बिलकुल ग़ायब हो जाता है। किन्तु फिर भी तुम, तुम्हारी आत्मा स्वप्नावस्था में जीवित रहती है। शायद तुम कहो कि घोर स्वप्नहीन निद्रावस्था में हम नहीं रहते, क्योंकि उसकी हमें कोई ख़बर नहीं होती। किन्तु क्या सचमुच तुम उस समय नहीं रहते? क्या तुम उस समय मृतक-जैसे हो जाते हो? कदापि नहीं। यद्यपि बुद्धि और व्यक्तिगत चेतना गाढ़ निद्रावस्था में बिलकुल लोप हो जाती है, तथापि असली अपना आप, असली 'तुम' सदैव वही बने रहते हो। निर्विकार और निर्विकल्प तत्त्व, तुम्हारी वास्तविक आत्मा, तीनों लोकों—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति—में, निरंतर संचार करती रहती है। यही **ओम्** है। अपने आप को केवल चित्त, बुद्धि या मस्तिष्क समझने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। तुम कैसे जानते हो कि दुनिया है? तुम कैसे जानते हो कि विश्व का अस्तित्व है? क्या केवल इस बल पर कि तुम पदार्थों को छूते, उन्हें चखते और सूंघते हो? क्या केवल यही प्रमाण है? यदि तुम कहो, यह देखो विक्टर ह्यगो, राबर्ट इंगरसोल, इमर्सन, आदि सब बड़े-बड़े विचारक दुनिया के सम्बन्ध में इतना अधिक लिख रहे हैं, तो हम प्रश्न करते हैं कि ऐसी धार्मिक पुस्तकें भी हैं, यही तुम कैसे जानते हो? इन्द्रिय के ही द्वारा तुम उनका अस्तित्व जानते हो न? अस्तु, तुम्हारी इन्द्रियाँ इस जगत् के अस्तित्व का एक-मात्र प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

सम्पूर्ण उपलब्धि (प्रत्यक्षीकरण) और अनुभव आदि का मुख्य कारण इन्द्रिय-बोध है। किन्तु इन्द्रिय-बोध तुम्हारी जाग्रत-अवस्था तक ही परिमित नहीं है। तुम्हारी जाग्रत-अवस्था में तुम्हारी इन्द्रियाँ स्थूल-रूप होती हैं। किन्तु क्या तुम्हारे स्वप्नों में तुम्हें इन्द्रिय-ज्ञान और उपलब्धि नहीं होती? क्या उस समय के लिए विशिष्ट ज्ञान-इन्द्रियाँ तुम्हारे पास नहीं होतीं? निस्संदेह बाह्य नेत्र और बाह्य श्रोत्र वहाँ काम नहीं करते

हैं। वास्तव में स्वप्न-लोक में तुम एक ही साथ इन्द्रियों के विषयों को और तदनुरूप ज्ञान-इन्द्रियों और कर्मों को रच लेते हो। इसका निष्कर्ष यह होता है कि स्वप्नलोक में इन्द्रियाँ और इन्द्रियों द्वारा अनुभूत पदार्थ अर्थात् इन्द्रिय-गोचर विषय एक ही शक्ति के धन और ऋण पहलुओं के समान हैं। जैसे किसी सिक्के का अग्र-भाग और पृष्ठ-भाग उस सिक्के पर निर्भर है, वैसे ही स्वप्न में कर्ता और कर्म एक साथ ही एक ही शक्ति से उद्भूत होते हैं। स्वप्न के कर्ता और कर्म दोनों **ऊँ** में उ ध्वनि के अन्तर्गत हैं और आधारभूत तत्त्व, जिसमें कर्ता और कर्म दोनों तरंगों की तरह प्रकट होते हैं, वास्तविक आत्मा या **ओम्** है। वेदान्त के अनुसार, ठीक स्वप्न की तरह तुम्हारी जाग्रत-अवस्था में भी तुम्हारी इन्द्रियाँ और इन्द्रिय-गोचर पदार्थ एक ही शक्ति के धन और ऋण पहलुओं की भाँति परस्पर सम्बन्धित हैं। स्वप्न में यद्यपि पदार्थों की उत्पत्ति तुरन्त की हुई सिद्ध होती है, तो भी वे स्वप्न-काल में अपना दीर्घ अतीत काल रखते हुए मालूम पड़ते हैं। इसी प्रकार जाग्रत-अवस्था में भी जगत् के पदार्थ यद्यपि अपने एक दीर्घकालीन इतिहास के साथ प्रकट हुएं मालूम होते हैं, किन्तु वास्तव में वे उन विषयों को ग्रहण करने वाले कर्ता के साथ ही प्रकट होते हैं। अच्छा, जब तुम कहते हो कि यह जगत् सत्य है, स्थूल है, कठोर है, तब यदि तुम्हारा कथन उन ग्राहक इन्द्रियों अथवा कर्ता के साक्ष्य पर पूर्णतया निर्भर नहीं है, तो किस पर निर्भर है? और यह गवाही तो ठीक उसी प्रकार की है जैसे स्वप्नदर्शी अहं स्वप्न के पदार्थों को सत्य कहता है—अथवा जैसे किसी चित्रपट में चित्रित मनुष्य उसी चित्रपट पर अंकित अपने कुत्ते को सत्य कहे, किन्तु यथार्थः दोनों मिथ्या हैं, इसमें शक करने की गुंजाइश नहीं।

अच्छा, इन्द्रियाँ अस्तित्व में कैसे आती हैं? महातत्त्वों से। इन महातत्त्वों को तुम कैसे जानते हो? इन्द्रियों के द्वारा। क्या यह तर्क युक्ति संगत है? यह चक्र में तर्क करना (reasoning in circle—धूम—

फिरकर उसी स्थान पर पहुँच जाना) कैसे ठीक हो सकता है ? इससे तो जाग्रत-अवस्था के जगत् की मिथ्या-शीलता स्वतःसिद्ध हो जाती है। स्वप्नलोक में जब तक तुम स्वप्न देखते रहते हो, पदार्थ सत्य मालूम होते हैं; पर जाग्रत-अवस्था में वही पदार्थ लुप्त हो जाते हैं। जाग्रत-अवस्था में सब वस्तुएँ स्थूल मालूम होती हैं; किन्तु गाढ़ निद्रावस्था मे वही स्थूल जगत् कहाँ जाता है? उसका कहीं पता नहीं चलता। यहाँ हम देखते हैं कि सत्य की परिभाषा जाग्रत या स्वप्नावस्था के व्यापारों पर लागू नहीं होती।

हिन्दू लोग **सत्य उसे कहते हैं जो सब अवस्थाओं में स्थिर रहे।** एक समय जिसका अस्तित्व जान पड़ता है और थोड़ी ही देर में जो छाया की तरह लुप्त हो जाता है, वह अवश्य अलीक (मायिक) व्यापार है। हर्बर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer) ने भी सत्य का यही लक्षण किया है।

स्वप्न लोक को तुम झूठा क्यों कहते हो ? इसीलिये न, कि वह तुम्हारी जाग्रत-अवस्था में लुप्त हो जाता है। तब तो मिथ्यात्व का यही लक्षण जाग्रत-अवस्था पर भी लागू होता है। स्वप्नलोक या गाढ़ निद्रावस्था में जाग्रत-अवस्था कहाँ रहता है ?

"ॐ" में 'अ' की ध्वनि जाग्रत-अवस्था के बाह्य कर्ता और कर्म को वास्तविक आधार-रूप तत्त्व का आविर्भाव-मात्र सूचित करती है।

ओह ! मनुष्य के हृदय को कैसे पक्षपात ने घेर लिया है। लोग कहते हैं, हमारे पास असल नगदी है। यह स्थूल, साकार प्रतीत होने-वाली दुनिया सत्य है। ऐ मूर्ख, एकमात्र असली सत्य तुम स्वयं हो, तुम्हारा अपना आप निर्विकार और नित्य है। वही एकमात्र असली वस्तु है, बाकी सब इन्द्रियों का छल है। कुछ लोग इस सिद्धान्त को इसलिए स्वीकार करना नहीं पसन्द करते, क्योंकि उन्हें इस सत्य की प्राप्ति के लिए स्वप्न और गाढ़ी निद्रा की अवस्थाओं को जाग्रत-अवस्था की प्रति-

योगिनी बनना पड़ता है। उनके विचार के लिये कुछ और शब्द कहे जायँगे। पृथ्वी-रूपी अति भारी बिन्दु के आधे से अधिक धरातल पर सदा रात रहने से पृथ्वी की प्रायः आधी जन-संख्या सदा स्वप्न या गाढ़ निद्रा की दशा में रहती है। हर एक व्यक्ति, चाहे जिस देश का हो, ठीक उतने ही निद्राशील अनुभव में होकर गुज़रता है, जितना जागते हुए अनुभव में से। सम्पूर्ण बाल्यकाल क्या एक दीर्घ निद्रा नहीं है? पुनः मृत्यु भी निद्रा है। अच्छा, प्रारम्भ के तीन या चार वर्ष तो तुम सदा सोते रहते हो। अब जाग्रत अवस्था में बीतनेवाले समय की घंटों में गिनती करो। तुम्हें यह देख कर आश्चर्य होगा कि तुम्हारा आधा जीवन सोने में और आधा जागने में बीतता है। जाग्रत-अवस्था में जो हो, उस पर विचार करने और निद्रावस्था में जो कुछ हो, उस पर विचार न करने का तुम्हें क्या अधिकार है? नींद की दशा में क्या तुम मर जाते हो? नहीं। तुम्हारी स्वप्नावस्था के अनुभव भी तो अनुभव हैं। फिर उन पर ध्यान न देने का क्या कारण है? यदि जाग्रत-अवस्था अधिक शक्तिशाली हो, तो क्या निद्रा कम शक्तिशालिनी है जो बिना अपवाद सभी बलवानों और बुद्धिमानों के हाथ-पैर बाँधकर हर रात को उन्हें पलँग या कौच पर लम्बा लिटा देती है? निद्रा की यह निठुर शक्ति हमारी जागते रहने की भी उत्कट इच्छा की भी परवाह नहीं करती। वास्तव में निद्रावस्था की उसी तरह अपनी निराली दुनिया है जैसे जाग्रत-दशा की। ऐसी दशा में यदि जाग्रत लोक पर ध्यान दिये बिना तुम नहीं रह सकते, तो स्वप्नलोक पर भी तुम्हें समुचित विचार करना चाहिए।

अमेरिकावाले और यूरोपीय लोग हर एक बात का निर्णय बहुमत की दृष्टि से करते हैं। अच्छा, तब तो स्वप्नावस्था और गाढ़ निद्रावस्था को भी वोट मिल जायँगे। यदि जाग्रत-अनुभव के प्रमाण पर स्वप्नावस्था का अनुभव मिथ्या कहा जाय, तो स्वप्नलोक और गाढ़ निद्रा-

वस्था के प्रमाण पर जाग्रत-अनुभव भी असत्य ठहरता है। पुनः समस्त पौधे तो मानो निरन्तर अविछिन्न गाढ़ निन्द्रावस्था में रहते हैं, पशुवर्ग निरन्तर स्वप्नशील दशा में रहता है। संसार तुम्हें जैसा प्रतीत होता है, उससे बिलकुल ही भिन्न वह उन्हें जान पड़ता है। फिर उनके अनुभव को क्यों नहीं मानते? चींटी के नेत्रों, मेंढक के नेत्रों, उल्लू के नेत्रों, हाथी के नेत्रों के लिए वस्तुएँ उससे बिलकुल ही भिन्न रूप में होती हैं, जैसी वे तुम्हारे लिए हैं। अरे, फिर भी तुम कहते हो कि केवल मनुष्य के अनुभवों पर विचार किया जाना चाहिए और जाग्रत-अवस्था या जाग्रत-लोक के केवल तुम्हारे अनुभवों को सत्य माना जाना चाहिए। किन्तु यदि समस्त महापुरुषों के अनुभवों को भी तुम ठीक-ठीक ग्रहण करो, तो उससे भी तुम्हें विश्वास हो जायगा कि यह स्थूल और प्रत्यक्ष प्रतीत होने वाला जगत् मिथ्या है। तुम पूछोगे कि यह क्योंकर? निस्सन्देह हमारे पदार्थ-विज्ञानी और दार्शनिक पंडित हक्सले गण और स्पेंसरगण––सबके सब जाग्रत-दुनिया की सत्यता पर बहुत ज़ोर देते हैं, फिर उनका अनुभव दुनिया की असत्यता कैसे प्रकट कर सकता है? ज़रा सोचिए। अच्छा, तुम उनके उत्कृष्ट विचारों को मानोगे या निकृष्ट विचारों को? सोने या ख़र्राटे भरने के समय की उनकी उक्तियों पर क्या तुम ध्यान न दोगे? अच्छा सोचो, किस दशा में ये महान् लेखक अपनी पूर्ण प्रभा से प्रकाशित हुए हैं? जिस समय ज्ञान उनसे स्वतः फूटकर बह निकलता है, तथा वे अपनी सर्वोत्कृष्ट दशा में होते हैं। परिणाम-स्वरूप वे हमारे पूर्ण सम्मान तथा विश्वास के योग्य होते हैं, उनकी इस उच्चतम दशा में उनके पास जाओ और देखो कि उनके प्रत्येक रोमकूप, उनकी त्वचा के प्रत्येक रोम जगत् की असत्यता की दुहाई देकर अद्वैत की घोषणा कर रहा है या नहीं? उस अवस्था में मेरा-तेरापन नहीं है, द्वैत नहीं है, अनेकता नहीं है; व्यक्तित्व नहीं है, दुनिया नहीं है। हमारे सारे व्यापार पिघल कर शून्य में लय

हो जाते हैं। ऐसे समय विचारवान् एकाग्र-चित्त हो जाता है। यह अवस्था समाधि की है और पूर्णावस्था है। यह वह अवस्था है जिसमें स्वभावतः सम्पूर्ण ज्ञान की विशुद्ध धारा उससे अपने आप बह निकलती है। ज्ञान उससे उसी प्रकार फूट-फूट कर निकलने लगता है, जैसे सूर्य से प्रकाश। ऐसी अवस्था में वह वार्तालाप भी नहीं कर सकता। जब वह समाधि-लोक से बाहर निकलता है, तभी बातचीत का श्रीगणेश होता है, और वे महान् आविष्कारक और विचारक हो जाते हैं। लो, अब महान् विचारकों की उत्कृष्ट अवस्था का अनुभव भी दुनिया की असत्यता को प्रमाणित करता है। इसे और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। हम गम्भीर चिन्ता करते समय क्या करते हैं? चिन्ता करते समय तुम एक विषय को चुन लेते हो, और सब विषयों को हटाकर तुम एक ही प्रकरण पर ध्यान जमाते हो। तुम अपने पूर्ण चित्त से उसी पर एकाग्र हो जाते हो, तुम्हारी सब शक्तियाँ और पौरुष उसी एक विशेष प्रकरण में लग जाता है। चित्त मानो उस कल्पना से परिपूर्ण हो जाता है। फल यह होता है कि वह कल्पना लुप्त हो जाती है, उसका हमें ध्यान नहीं रहता और शुद्ध आलौकिक चेतना, परम चेतना, जो सम्पूर्ण ज्ञान का स्रोत है, हमारे हाथ लगती है।

मनोविज्ञान के एक सुप्रतिष्ठित नियम के अनुसार, किसी वस्तु का हमें बोध होने के लिए उस वस्तु के पास किसी भिन्न वस्तु का होना ज़रूरी है। किंतु जब चित्त में कोई दुविधा नहीं होती, तब समस्त पदार्थ-ज्ञान विश्राम लेता है और तब दिव्य ज्ञान की प्राप्ति होती है।

जब टेनीसन (Tennyson) के चित्त से लॉर्डपन का ध्यान बिलकुल दूर हो जाता है, केवल तभी वह कवि टेनीसन हो सकता है। जब बर्कले (Berkeley) धन-सम्पत्ति पर कब्ज़ा जमाने वाला और सर्वाधिकारों की रक्षा चाहने वाला लाट पादरी नहीं रहता, केवल तभी वह दार्शनिक बर्कले हो जाता है। जब ह्यूम (Hume) उन देहा-

भिमानों से परे हो जाता है, जिन्हें उसके जीवन-चरित-लेखकों ने लिखा है, केवल तभी वह दार्शनिक ह्यूम बनता है। जब हक्सले (Huxley) इतिहास -लेखकों का हक्सले नहीं रहता और मानों सबका हो जाता है, तभी वह पदार्थ-विद्या का ज्ञाता हक्सले है।

यदि हमारे द्वारा कोई महान् और विचित्र कार्य सम्पादित होता है, तो उसका श्रेय लेना मूर्खता है; क्योंकि जब वह काम हो रहा था, तब यशाकांक्षी अहंकार बिलकुल ग़ैरहाज़िर था, अन्यथा कार्य का सौन्दर्य सम्भव न होता। "मैं कह रहा हूँ" यह चेतना बिलकुल ग़ैरहाज़िर थी। वस्तुतः कार्य का सौन्दर्य, 'मैं' की अनुपस्थिति में, ईश्वर से अपने आप प्राप्त होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ये महान् कवि और ये महान् लेखक, सभी अपने आचरणों से, नहीं-नहीं अपनी देह के प्रत्येक रोमकूप से, मानों यह उपदेश देते और प्रचार करते हैं कि "जगत् मिथ्या है"। उनका यह निर्णय, उनकी यह सम्मत्ति, हमें उनकी सर्वोत्कृष्ट दशा देखकर ही मालूम होती है। शब्दों की अपेक्षा कार्य अधिक ज़ोर से बोलते हैं। समर-भूमि में महान् शूरवीरों और नायकों को देखो; जब वे अपनी श्रेष्ठतम दशा में लड़ते हैं, गोलियाँ दनादन और सनासन उनके आस-पास मँडराती रहती हैं। यहाँ गोली लगी, वहाँ घाव हुआ, ख़ून उनकी देह से वेग से बह निकला, उनका शरीर टुकड़े-टुकड़े हुआ जाता है, फिर भी वे आगे बढ़ते जाते हैं। ऐसी दशा में पीड़ा पीड़ा नहीं मालूम होती। क्यों? क्योंकि व्यवहारतः अब उनके लिये शरीर शरीर नहीं है। बाहरी दुनिया दुनिया नहीं है। कार्य की भाषा में वे जगत और शरीर को मिथ्या कर रहे हैं। इस प्रकार तुम्हारे नेपोलियन (Napolean), तुम्हारे वाशिंगटन (Washington), तुम्हारे वेलिंगटन (Wellington) और दूसरे लोग अपने कामों के द्वारा तुमसे कहते हैं कि मैं-तैं के तुच्छ घेरे में बाँधनेवाली वृत्ति सचमुच उपेक्षा के योग्य है। वे अपने कार्यों के द्वारा तुम्हें

समझाते हैं कि अखिल तेज-स्वरूप वास्तविक आत्मा जब अपना सिक्का जमाता है, तब दुनिया कुछ नहीं रह जाती। पूर्ण ज्ञान और परम शक्ति-स्वरूप सच्चा अपना आप ही एक-मात्र कठोर सत्य है, उसके सामने जगत् की बाह्य सत्यता धुल जाती है।

योद्धा की भुजाओं को प्रबल कौन बनाता है? जब वह अपनी शुद्ध आत्मा, वास्तविक कठोर, दृढ़, अचल आत्मा से तादात्म होता है, तभी उसकी भुजाएँ महा प्रबल हो उठती हैं।

चित्त को इतने आविष्कार और नूतन कल्पनाएँ कैसे सूझ पड़ती हैं? जब थोड़े समय के लिए भी क्षुद्र-बुद्धि और चित्त का अहं-भाव उस परमात्मा की वास्तविक कठोर, सुदृढ़ सत्ता में, सच्ची आत्मा में लीन हो जाता है, तब मानो चित्त ईश्वरोपदिष्ट हो जाता है। वही सत्य तुम हो, वही सत्यता तुम हो, तुम विश्व के प्रकाश हो, प्रभुओं के प्रभु हो, पवित्रों के पवित्र हो, ऊँचों में परमोच्च हो।

ऊँ (अ-उ-म्) मंत्र में, पहला अक्षर 'अ' उस जबरदस्त सच्चाई के लिए आता है जो तुम्हारी आत्मा अपना आप है, और जो इस जाग्रत के भौतिक जगत् का आधार और प्रकाशक है; 'उ' सूक्ष्म जगत का प्रतिपादक है, और अन्तिम अक्षर 'म्' उस परम आत्मा का सूचक है जो अन्धकारमय प्रलय-अवस्था का सहारा और अपने आपको समस्त अज्ञात रूप से प्रकट करनेवाला है।

ऊँ उच्चारण करते समय, बुद्धिमानों को अपना ध्यान एकाग्र करना पड़ता है। सूर्योदय के समय प्रातःकाल रंगों को प्रकट करने वाले तथा दोपहर के समय फिर उन्हें अपने में लीन करने वाले सूर्य की भाँति, तीनों लोकों को प्रकट एवं विनष्ट करनेवाली ज़बर्दस्त वास्तविक आत्मा को अनुभव करने में अपनी भावनाओं को लगाना पड़ता है।

ये लोक दृश्य-मात्र हैं। स्वप्नावस्था में तुम एक भेड़िया देखते हो और डरते हो कि भेड़िया तुम्हें खा जायगा। तुम डर जाते हो,

किन्तु जिसे तुम देखते हो, वह भेड़िया नहीं है, वह तुम ख़ुद ही हो। अतः वेदान्त तुम्हें बतलाता है कि जाग्रत-अवस्था में भी "मित्र या शत्रु तुम ही हो", तुम्हीं सूर्य हो और तुम्हीं वह सरोवर हो जिसमें सूर्य प्रतिबिम्बित होता है। तुम्हीं दीपक और पतंगे हो। तुम्हारा जो घोर-से-घोर शत्रु है, वह भी तुम हो, दूसरा कोई नहीं। उच्चारण करते समय इस दर्जे तक तुम्हें अपने चित्त को इस तथ्य के अनुभव मे लगाना होगा कि सम्पूर्ण ईर्ष्या द्वेष चित्त से समूल उखड़ जायँ निकाल दिये जायँ। पृथकता, भिन्नता के इस विचार को अपने हृदय से दूर कर दो। मित्र या शत्रु का रूप तुम्हारा कोरा स्वप्न है। तुम्हीं मित्र हो और तुम्हीं शत्रु हो। कल तुमने जो बातें की थीं। वे क्या आज तुम्हारे साथ हैं? क्या स्वप्न नहीं हैं? वे चली गईं कल की वस्तुएँ कहाँ हैं? क्या वे चली नहीं गईं? इसी अर्थ में जाग्रत अवस्था का अनुभव भी स्वप्न है। जो असली, खरी नगदी, जबरर्दस्त सच्चाई वास्तविक आत्मा सबके पीछे, सबका आधार है, उसका अनुभव करो।

सब स्थूल पदार्थों को सूक्ष्म अथवा कल्पना-मात्र अनुभव करने के बदले, कुछ लोग सूक्ष्म विचारों को स्थूल और ठोस करना, साकार बनाना चाहते हैं। वे स्थूल-जगत् को सूक्ष्म-लोक या मानसिक जगत् की अपेक्षा, अधिक सत्य मानते हैं। वेदान्त कें अनुसार, स्थूल और सूक्ष्म-लोक दोनों ही मिथ्या हैं, तुम्हें दोनों से ऊपर उठना चाहिए, क्योंकि विश्राम, सच्ची शान्ति, सुख की प्राप्ति तभी हो सकती है, जब कि नाम-रूपों के पीछे की सत्यता, खरी नगदी का अनुभव किया जाय।

अ-उ-म् में **अ** को कभी-कभी मात्रा या रूप की संज्ञा दी जाती है, **उ** प्रायः मात्रा या रूप कहलाता है, **म्** भी मात्रा या रूप कहा जाता है। किन्तु **ॐ** मात्रा या रूप पर नहीं टिकता, वह सत्यता, वास्तविकता को प्रतिनिधि है, जो खरी नगदी है और इन सब मात्राओं,

रूपों की आधार है। लोग कहते हैं "हम चाहते हैं जीवन और केवल जीवन; कोरी कल्पनाएँ हमें न चाहिए।" अरे! जीवन क्या वस्तु है? तुम कौन-सा जीवन चाहते हो—स्वप्नावस्था का ? या गाढ़ निद्रावस्था का ? अथवा जाग्रत-अवस्था का? ये सब तो केवल दिखाऊ हैं। वास्तविकता, सच्चा जीवन तुम्हारा अपना आप वा आत्मा है। सत्य के ऐसे कठोर नियम हैं, जो इन्द्रियों के द्वारा तुम्हें सदा विषयानन्द न भोगने देंगे। अपने आप को इन्द्रियों का दास बनाकर, इन्द्रिय-जगत् के हाथ बेंचकर क्या तुम्हारे लिए सुखी होना सम्भव है? नहीं, यह असम्भव है। अत्यन्त निर्दय, परम स्वतन्त्र क़ानून हैं, जो इन्द्रियों के भोग में तुम्हें सुखी न होने देंगे।

आत्मा असली जीवन और नगदी है। यह अनुभव करो तो भौतिक सुख तुम्हें अपने आप खोजना शुरू करेंगे। जैसे पतंगा जलती हुई ज्वाला के पास आता है, जैसे नदी समुद्र में मिलती है, जैसे छोटा कर्मचारी किसी महान् सम्राट् का आदर-सम्मान करता है, ठीक उसी तरह सुख तुम्हारे पास तब आयेंगे, जब तुम अपने सच्चे स्वरूप को अपने परमेश्वरीय प्रताप को, सच्ची तेजस्वी आत्मा को, पूरी तरह से जान और अनुभव कर चुकोगे। ऊँ इसी आत्मा का प्रतिपादन करता है।

यह दिखला दिया गया है कि अ-उ-म् से, इन तीन मात्राओं से, हिन्दू, विशेषतः वेद, किस तरह तुम्हें आत्म-स्वरूप आधारभूत सत्यता का पता बतलाते हैं। ऊँ का अर्थ है पर्दों के पीछे की आधारभूत सत्यता, नित्य सत्य, अविनाशी आत्मा, जो तुम स्वयं हो। बस, इस पवित्र मंत्र ऊँ को गाते हमय तुम्हें अपनी बुद्धि और देह को अपने सच्चे स्वरूप आत्मा में झोंक देना होगा, इन्हें सच्ची आत्मा में गला देना होगा। यह अनुभव करो और भावना की भाषा में इसे गाओ। अपने कृत्यों से इसे गाओ, अपनी देह के प्रत्येक रोमकूप के द्वारा इसे

गाओ। अपनी नाड़ियों में इसे प्रवाहित होने दो, अपने सीने में इसे धड़कने दो। अपनी देह के हरेक रोम, अपने रुधिर के प्रत्येक बूंद में इस सत्य को झनझनाने दो कि तुम प्रकाशों के प्रकाश हो, सूर्यों के सूर्य हो, अखिल विश्व के स्वामी हो, प्रभुओं के प्रभु हो, सच्ची आत्मा हो। सूर्य और तारागण तुम्हारे हस्तकौशल हैं, स्वर्ग तथा पृथ्वी तुम्हारी कारीगरी है। हर एक वस्तु तुम्हारी महिमा प्रकट करती है, और सम्पूर्ण प्रकृति तुम्हारी आज्ञा का पालन करती है।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

७

ईश्वर अन्तरात्मा

[२४ दिसम्बर, १९०२ को हर्मिटिक ब्रदरहुड हाल, सन-फ्रांसिस्को, अमेरिका में दिया हुआ व्याख्यान]

मूसा की पुस्तकों में हम पढ़ते हैं कि परमेश्वर ने दुनिया की सृष्टि की। उसने अपनी कारीगरी देखी और वाह! कैसी सुन्दर, कैसी उत्कृष्ट थी। इंजील के सृष्टि-खंड में हम इसके सम्बन्ध में पढ़ते हैं, और वहाँ भी ऐसी ही बात है। "ऐ प्रभु! तेरी इच्छा पूर्ण हो", इस वचन से चित्त की जो वृत्ति प्रकट होती है उसे वेदान्त, आप जानते हैं, कहीं अधिक ज़ोर से प्रकट करता है। हिन्दू इसे यों कहता है—"मेरी इच्छा पूर्ण हो रही है। मेरी इच्छा पूर्ण हो रही है।" स्त्री जब अपनी इच्छा अपने पति की इच्छा से अनन्य कर देती है, तब वह सहर्ष कह सकती है कि "मेरी इच्छा पूरी हो रही है।" फिर "तेरी इच्छा पूर्ण हो", यह प्रार्थना करने की उसे ज़रूरत नहीं, क्योंकि वह दो नहीं हैं, एक हैं। अपनी इच्छा को अपने स्वामी की इच्छा के सामने अधीन कर देने में उसे बड़ा प्रयत्न करना पड़ा था, किन्तु बारंबार के प्रयत्नों से पतिव्रता स्त्री जब भेद-भाव को जीत लेती है, तब वह अपने पति के कामों को अपने ही काम समझती है, उसे उनसे वही आनन्द आता

है, जो अपने कामों से मिलता है। इसी तरह वेदान्ती दुनिया में हर एक वस्तु को अपनी ही रचना के समान भोगता है। जीते-जागते लोगों के लिए—

Stone walls do not a prison make,
Nor iron bars a cage
Minds innocent and quiet, take
That for a hermitage.

पत्थर की दीवारें क़ैदख़ाना नहीं बनातीं, न लोहे की शलाका पिंजड़ा ही। शान्त और निष्पाप चित्त उन्हें साधु-आश्रमवत् अंगीकार करते हैं।

इसके विरुद्ध जो मूर्ख अपने असली आत्मा को नहीं जानते, जो अहंकारी और स्वार्थी हैं, वे अपने महलों और राजभवनों को भी कारागारों, क़ब्रों और नरकों से बदतर बना लेते हैं। वे अपनी तुच्छ चिन्ताओं, नीच अधम इच्छाओं और काल्पनिक भय तथा शंकाओं से अपनी ज़ंजीरें आप गढ़ लेते हैं।

वेदान्त तुम्हें बतलाता है कि तुम्हारा सुख तुम्हारा अपना ही कार्य है, सांसारिक कामनायें उसमें हस्तक्षेप करनेवाली कौन हैं? सत्य को अनुभव करो और तुम मुक्त हो। यूरोप और अमेरिकावासियों के लिए वेदान्त का अनुभव दुर्लभ है, क्योंकि वे अधिकांशतः ऐसा सोचते हैं कि उन्हें अपने आप को ईश्वर में परिवर्तित करना पड़ेगा, उन्हें अपने में ईश्वरत्व पैदा करना होगा। किंतु वेदान्त के अनुसार स्वतःसिद्ध सत्य यह है कि तुम तो पहले ही से ब्रह्म हो, ब्रह्म के सिवाय और कुछ नहीं हो। तुम्हें ईश्वरत्व पैदा करना नहीं है, उसे केवल जानना, अनुभव या महसूस करना है। तुम्हें उसे अमल में लाना है, तुम्हें उसका उपयोग करना है। यहाँ एक मनुष्य है जिसके घर में बहुत बड़ा ख़ज़ाना गड़ा हुआ है; किन्तु वह उसे भूल गया है। यहाँ एक दूसरा मनुष्य है जिसके घर में कोई ख़ज़ाना नहीं है। वे दोनों ख़ज़ानों के

लिए खोदना शुरू करते हैं। जिस मनुष्य के घर में ख़ज़ाना है, पर जो उसे भूल गया था, वह तो खोदने से पा जायगा; किन्तु जिस मनुष्य के घर में कोई गड़ी हुई दौलत है ही नहीं, वह उसे नहीं पायेगा। ख़ज़ाना वहाँ मौजूद है, अब कृपण या कंजूस न रहो, उसे काम में लाओ। तुम्हें ख़ज़ाना वहाँ गाड़ना नहीं है, तुम्हें केवल उसका उपयोग करना है। तुम्हारी आत्मा स्वभाव से अपवित्र और पापी नहीं है, वह एक व्यक्ति (आदम) के पाप से पतित नहीं हो गई है, और न वह उद्धार के लिये किसी दूसरे व्यक्ति (ईसा मसीह) के पुण्य पर निर्भर करती है।

यह एक काला तख्ता है, जो कड़ी और ठोस वस्तु है। तुम इस काले तख्ते को चाहे जितना पोंछो, चाहे जितना मलो और बार-बार रगड़ो, किन्तु क्या तुम इसे पारदर्शी बना सकते हो? नहीं, हरगिज़ नहीं। अच्छा, एक शीशा लो। उसपर चाहे मिट्टी पड़ गई हो, वह चाहे मैला और गन्दा हो गया हो, किन्तु तुम्हारे साफ़ कर देते ही वह पारदर्शी हो जाता है। तुमने अपने प्रयत्नों से उसे पारदर्शी नहीं बनाया है; तुमने केवल उस पारदर्शिता को प्रकट कर दिया है, जो वहाँ पहले से मौजूद थी। काला तख्ता स्वभाव से पारदर्शी नहीं है और न किसी उद्योग से पारदर्शी बनाया जा सकता है।

यह स्वाभाविक विश्वास जो प्रत्येक मनुष्य में मुक्ति की प्राप्ति के लिए दृढ़तापूर्वक गहरा धँसा हुआ है, आत्मा की आन्तरिक विशुद्धता और पाप-शून्यता को सिद्ध करता है, चाहे वह आत्मा कुछ काल से भले ही मलिन हो गई हो। यह विश्वव्यापी स्वाभाविक विश्वास उस अस्वाभाविक सिद्धान्त को झूठा करता है कि आत्मा स्वभाव से पापी है, और जो हमें उस नतीजे पर पहुँचा देता है कि काले तख्ते के समान वह कभी पारदर्शी या स्वच्छ नहीं बनाई जा सकती। अतएव हमें मानना होगा कि मनुष्य की सच्ची प्रकृति ईश्वरत्व है। यदि परमेश्वरत्व मनुष्य

की अपनी आत्मा, अपना स्वरूप न होता, तो किसी सिद्ध या महात्मा का अवतार ही इस संसार में कभी संभव न होता।

राम कहता है—"डरो मत, बाहर आओ, अपना सारा बल और तेज जमा करो, और बहादुरी से अपने जन्म-स्वत्व पर अधिकार जमाओ। कहो, "मैं वह हूँ।" डरो मत, काँपों नहों।

सिनाई नामक पहाड़ी पर चलते हुए मूसा ने एक झाड़ी को जलता हुआ देखा। उसने पूछा—"तुम कौन हो? वहाँ कौन है?" वह चाहे जोर से न बोला हो, किन्तु उस विचित्र ज्वाला से वह बड़ा चकित हुआ, जिसने झाड़ी को प्रकाशित तो कर रक्खा था, जलाया नहीं था। झाड़ी से उत्तर आया—"मैं वही हूँ, जो मैं हूँ" यही विशुद्ध "मैं हूँ" वास्तव में तुम्हारी आत्मा या तुम्हारा अपना आप है।

तुम्हारी आत्मा, तुम्हारी सच्ची प्रकृति, पारदर्शी हीरा या चमकते हुए बिल्लौर के समान है। इसके पास कोई काली वस्तु रक्खो और स्फटिक (बिल्लौर) काला जान पड़ेगा, विशुद्ध स्फटिक के पास कोई लाल वस्तु रक्खो और वह लाल मालूम पड़ेगा, और इसी तरह अन्य रंगों का हाल है। वास्तव में विशुद्ध बिल्लौर बेरंग है, वह सब रंगों से परे है। लालिमा, कालिमा या कोई और रंग उसका अपना नहीं है। वह है, जो कुछ वही है। इसी प्रकार तुम्हारी आत्मा, तुम्हारा सच्चा स्वरूप "जो कुछ वास्तव में है, वही है।" वह है वास्तव में विशुद्ध "मैं हूँ।"

यह एक भारतीय मनुष्य है। वह उस पवित्र स्वरूप, पवित्र आत्मा के पास एक काला, हिन्दू-रङ्ग का, चिथड़ा लाकर रखता है और स्फटिकवत् आत्मा काली भासित होती है, मानो वह उसी रङ्ग की है। यह विशुद्ध "मैं हूँ"—"मैं हिन्दू हूँ" हो जाता है। अमेरिका में, शुद्ध स्वरूप, विशुद्ध स्फटिक, नाम-रूप-रङ्गहीन आत्मा के पास, एक यानकी (Yankee), मान लीजिए, एक पीला चिथड़ा रखता है,

तब विशुद्ध "मैं हूँ", यह "मैं एक अमेरिकावासी हूँ" के रङ्ग में रँग जाता है। एक दूसरा मनुष्य आता है, और विशुद्ध आत्मा (पारदर्शी स्फटिक) के पास, मान लीजिये, वह एक लाल चिथड़ा या लाल काग़ज़ का एक टुकड़ा रखता है, और पवित्र "मैं हूँ", यह "मैं एक नारी हूँ" के रङ्ग से रँग जाता है। तीसरा कोई दूसरी तरह का रँग आत्मा के पास रखता है, और कहता है, "मैं साहित्य का आचार्य (एम० ए०) हूँ।" इस तरह हम देखते हैं, एक कहता है "मैं ईसाई हूँ", दूसरा कहता है "मैं हिन्दू हूँ", तीसरा कहता है "मैं यानकी हूँ", चौथा कहता है "मैं जॉन बुल (John Bull) हूँ", पाँचवाँ कहता है "मैं बच्चा हूँ", छठा कहता है "मैं नारी हूँ", सातवाँ कहता है "मैं सिंह हूँ", आठवाँ कहता है "मैं चीता हूँ", इत्यादि। विशुद्ध सच्चा स्वरूप, रंगहीन, स्वच्छ; प्रकाशमान् आत्मा, ॐ या "मैं हूँ" सब में सामान्य है, सब में व्यापक है। वह अद्वैत निर्विकार है, वास्तव में उसमें कोई रङ्ग नहीं है, तुम्हारे मूर्खता-पूर्ण विशेषणों ने उस पर रङ्ग चढ़ा दिया है। एक स्वच्छ दर्पण लो और उसके पास कोई रंग रख दो। रङ्ग उसमें उतर नहीं जाता, वह उसमें केवल प्रतिबिंबित होता है, किन्तु उससे संयुक्त नहीं होता। स्फटिक सदा विशुद्ध, स्वच्छ और रङ्गहीन रहता है। "मैं हूँ" सर्वव्यापक और सार्वभौम है। तुम में वह सर्वत्र उपस्थित है। "मैं हूँ" का विचार सिंह और चीते भी प्रकट करते हैं। यह पवित्र "मैं हूं", तुम हो। अपने पास रखे हुए काग़ज़ के रङ्गहीन टुकड़े या चिथड़े से अपने आपको एक कर देने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि एक समय ऐसा भी था जब यह निःअवयव, विशुद्ध आत्मा दूसरे रूप में बसती थी। "मैं हूं" ने दूसरा शरीर धारण किया था। एक समय था जब किसी पूर्व जन्म में तुम समझते थे "मैं सिंह हूँ" या "मैं बैल हूँ।"

सच्चे स्वरूप, आज, कल, सदा एक रहनेवाली वास्तविक "मैं

हूँ" का अनुभव प्राप्त करने से स्वतन्त्रता और आनन्द तुम्हें मिलता है। विशुद्ध "मैं हूँ" को काल स्पर्श नहीं करता, क्योंक पूर्व जन्म से विशुद्ध "मैं हूँ" इसी प्रकार चला आता है। वह देश से दूषित वा मलिन नहीं होती, क्योंकि यह सब शरीर उसी "मैं हूँ" के अधिकार में हैं। उसके लिए अखिल काल "अब" और सम्पूर्ण देश "यहाँ" है। यह विशुद्ध शब्द "मैं हूँ" नित्य वस्तु, और अपरिवर्त्तनीय सत्य का सूचक है। अब यही अनिवर्चनीय "मैं हूँ" ॐ द्वारा प्रतिपादित होता है। ॐ विशुद्ध "मैं हूँ" "मैं वही हूँ" का प्रतिनिधित्व करता है।

फ़ारसी भाषा के अनुसार ॐ 'ओ अम' है या "मैं वह हूँ", "मैं ब्रह्म हूँ"। "मैं हूँ" की पवित्र कल्पना को ॐ प्रतिपादन करता है।

1. In a thousand forms may thou attempt surprise,
   Yet, all-beloved one, straight know I Thee.
   Thou may with magic veils thy face disguise,
   And yet, all present One, straight know I Thee,
2. Upon the cypress's purest, youthful bud,
   All-beauteous growing One, straight know I Thee;
   In the canal's unsullied, living flood,
   All captivating One, well know I Thee.
3. When spreads the water-column, rising proud,
   All-sportive now gladly know I Thee;
   When, e'en in forming is transformed the cloud,
   All figure-changing One, there know I Thee;
4. Veiled in the meadow's carpet's flowery charms,
   All chequered starry fair One, know I Thee;
   And if a plant extend its thousand arms,
   O, all-embracing One, there know I Thee;

5. When on the mount is kindled morn's sweet light,
Straight-way, all-gladdening One, salute I Thee;
The arch of heaven o'erhead grows pure and bright,
All heart-expanding One, then breathe I Thee.

6. That which my inward, outward sense proclaims
Thou all-instructing One, I know through Thee;
And if I utter Allah's hundred names,
A name with each one echoes meant for Thee.

हे सबके प्यारे ! तू चाहे हज़ारों रूपों में मुझे विस्मित करने का प्रयत्न कर, फिर भी मैं तुझे झट जान लेता हूँ। ऐ सर्वत्र उपस्थित रहने-वाले ! तू अपना मुखड़ा चाहे मायावी घूंघटों में छिपा, फिर भी मैं तुझे झट जान लेता हूँ। (१)

ऐ विकासोन्मुख सर्व-सुन्दर ! सरों की पवित्रतम कई कोंपलों पर मैं तुझे झट पहचान जाता हूँ। सबको मोहनेवाले ! नहर की निर्मल सजीव धारा में मैं तुझे ख़ूब जान लेता हूँ। (२)

ऐ सर्व-कौतिकी ! जब जल-धारा सगर्व चढ़ती हुई फैलती है, मैं तुझे अत्यन्त प्रसन्नता से जान लेता हूँ। ऐ सब रूपों में बदल-बदल कर आनेवाले ! जब मेघ का रूपान्तर होता है, तो इस रूपान्तर में भी मैं तुझे झट जान लेता हूँ। (३)

ऐ चित्र-विचित्र तारामय रूपवान ! हरियाली-रूपी गलीचे पर फूलों की जो छवि छा रही है, उस शोभा में भी मैं तुझे जान लेता हूँ; और ऐ सब को आलिंगन करनेवाले ! यदि कोई पौधा अपनी सहस्रों भुजाएँ फैला देता है तो वहाँ भी मैं तुझे पहचान लेता हूँ। (४)

ऐ सब को प्रफुल्लित करनेवाले ! जब पर्वत पर प्रातः काल का मधुर

प्रकाश प्रज्ज्वलित होता है, तब तत्काल मैं तुझे नमस्कार करता हूँ। ऐ सर्व हृदयों के विकसित करने वाले ! जब शिर के ऊपर निर्मल नभमण्डल प्रकाशमान होता है, तब मैं तुझे अपनी साँसों में भरता हूँ। (५)

ऐ सब के शिक्षक ! वह जिसकी घोषणा मेरी बाहरी और भीतरी इन्द्रियाँ करती हैं, तेरे द्वारा मैं उसे जान लेता हूँ। और यदि मैं अल्लाह के सौ नाम लेता हूँ, तो प्रत्येक ध्वनि के साथ तेरा ही नाम अभि-प्रेत है। (६)

राम अब हज़रत मूसा के बारे में कुछ शब्द कहना चाहता है। जब हज़रत मूसा ने झाड़ी में एक आवाज़ सुनी, तब उसे अपने पास एक फुफकारता हुआ सर्प दिखायी दिया। डर के मारे मूसा की बुद्धि रफूचक्कर हो गई, वह थरथराने लगा, उसकी छाती धड़कने लगी, सारा ख़ून उनकी नाड़ियों में लगभग जम सा गया, वह हताश हो गया। तभी एक आवाज़ ने चिल्लाकर कहा—"ऐ मूसा ! डर मत, साँप को पकड़ ले। उसे मजबूती से पकड़, हिम्मत कर, उसे पकड़ लेने का साहस कर।" मूसा फिर भी काँपता रहा, और उस आवाज़ ने फिर कड़ककर उससे कहा—"मूसा ! आगे बढ़, सर्प को पकड़ ले।" मूसा ने पकड़ लिया और लो ! वह तो एक सुन्दर सा चमकता हुआ ड़ण्डा (आसा) था। अब इस कथा का अभिप्राय बताइए। साँप साँच का स्थानीय है। आप जानते हैं कि हिन्दू और अन्य पूर्व देशवासी सत्य या अन्तिम तत्त्व को शेषनाग द्वारा व्यक्त करते हैं। चक्कर-पर चक्कर बनाता हुआ, पेंचदार रूपों में सर्प कुंडली मारता है, और अपनी पूंछ लौटा कर अपने मुख में रख लेता है। इसी तरह हम इस दुनिया में देखते हैं कि चक्रों के भीतर चक्र हैं। यहाँ हर एक वस्तु घूम-घूम कर अपने को दोहराती रहती है और अन्तिम सिरे मिल जाते हैं। यह एक सार्वभौम सिद्धान्त है, जो सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है।

साँप को वीरतापूर्वक पकड़ने का अर्थ है, अपने आप में दैवी

नियम धारण करना या विश्वनियन्ता की स्थिति में आना। वीरतापूर्वक अपने आपको उस स्थिति में रक्खो और परमेश्वर से अपनी एकता अनुभव करो।

हज़रत मूसा उस जाति के थे जो ग़ुलामी में पड़ी हुई थी। यहूदी उन दिनों बुरी हालत में थे। वे अपने देश से निकाल दिये गये थे और गृह-हीन भटकते थे। अनेक विपत्तियों के कारण, जो उन्हें भोगनी पड़ती थीं, वे स्वभावतः परमेश्वर को एक घोर अत्याचारी और पूर्ण स्वेच्छाचारी समझने लगे थे।

यदि अनेक बैल एकत्रित होकर धार्मिक महासभा करें, तो वे ईश्वर का क्या वर्णन करेंगे? निस्संदेह वे ईश्वर को एक महाप्रतापी बैल बतावेंगे, ऐसा प्रतापी जिसके डर से ही दूसरे बैलों के प्राण छूट सकते हों। यदि सिंह अपनी धार्मिक महासभा करें, तो वे ईश्वर की कल्पना एक सबसे बड़े और सब से अधिक बलवान् सिंह के रूप में करेंगे, जो सब से अधिक भयानक सिंह होगा। क्या तुम अपनी बुद्धि से परे किसी चीज़ की धारणा कर सकते हो? क्या तुम अपने आप से बाहर कूद सकते हो? नहीं। सिंहों को ईश्वर के निर्णय के लिए बैठने और विचार आरम्भ करने दो, वे उसे एक भीमकाय, दारुण सिंह बना देंगे। इसी तरह यदि डरे लोग निर्णय के लिए बैठें और ईश्वर का विचार करने लगें, तो वे लाचार होकर उसे ग़ुलामों का एक सर्वोपरि स्वामी, हौवा, सबसे बड़ा मालिक, एक भयानक शासक मानेंगे। इसीलिये यहूदियों ने स्वभावतः परमेश्वर को एक भीमकाय, प्रतापी शासक, एक महान् स्वामी के रूप में चित्रित किया है।

अधिकांश पूर्वीय और विशेषतः सेमेटिक (Semetlc) भाषाओं में ईश्वर के लिए 'मालिक' शब्द आया है, जिसका उल्था अँग्रेज़ी में प्रायः 'मास्टर' शब्द से किया जाता है। इस नामकरण के सम्बन्ध में यहाँ पर कुछ कहना असंगत न होगा।

यहूदियों में बहुत-सी टोलियाँ थीं, और हर एक टोली का अलग-अलग देवता होता था। एक टोली विशेष का देवता एक समय मोलोक (Moloch) कहलाता था। इन टोलियों की आपस की लड़ाई में इसराईल की टोली की विजय हुई, और फलतः इस जाति के देवता 'मोलोक' ने और सब देवताओं को परास्त कर दिया और वही सारे यहूदियों का देवता बन गया। सेमेटिक जातियों के 'मोलोक' नामक अद्वैत और साकार ईश्वर के लिए 'मालिक' या 'मास्टर' शब्द किस प्रकार प्रचलित हुआ होगा, यह बात इस कथा से स्पष्ट हो जाती है। उन दिनों एक, अद्वैत, साकार मालिक की कल्पना ही सर्वोपरि विज्ञान था। अज्ञान के क्षेत्र में घुसना ही उनका प्रयत्न था और यही उनके लिए अनुकूल था। किन्तु अब परिस्थिति बदल गई है। अब अधिकांश लोग एकाधिपत्य नहीं चाहते, वे अब स्वराज्य चाहते हैं। अमेरिका में लोग स्वाधीनता चाहते हैं, इँगलैण्ड में तथा सर्वत्र स्वाधीनता चाहते हैं। पदार्थ-विद्या ने उन्नति की है। हर एक वस्तु का विकास और उसकी उन्नति हो रही है। अब वह समय आ गया है कि ईश्वर के सम्बन्ध में प्राचीन घमण्डी और अत्याचारी कल्पना से स्वतन्त्रता को फैलानेवाला विचार "अहं ब्रह्मास्मि", जो कि वेदान्त का सिद्धान्त है, विकसित किया जाय। जैसे इँगलैण्ड के स्वेच्छाचारी राजतंत्र की शक्तियाँ क्रमशः सीमित होती गईं, उसी तरह इस शरीरधारी ज़ालिम परमेश्वर की शक्तियाँ भी छिन्न-भिन्न करके धार्मिक स्वाधीनता लाभ करने का समय आ गया है। यहूदी राजनैतिक ग़ुलामी में रहते थे, अतएव उनका देवता उनसे अलग स्वतन्त्र मालिक के रूप में होना ही चाहिए था। तुम रजनीतिक और सामाजिक स्वाधीनता भोगते हो। तुम्हारा देवता, तुम्हारा निज स्वरूप, निज आत्मा होना चाहिए। आजकल लोग ग़ुलामी में नहीं रहना चाहते। बन्धन और दासता शीघ्रता से कूच कर रही है, विकास का बोलबाला है। अतएव हर एक वस्तु को आगे बढ़ना तथा ऊपर

चढ़ना चाहिए। अब क्या अकेला तुम्हारा व्यक्तिगत ईश्वर ही चुपचाप अपने स्थान पर खड़ा रहेगा? नही, कदापि नहीं!

प्राचीन समय में शैतान ईश्वर का प्रतिपक्षी था, और ईश्वर के पास कुछ फ़रिश्ते और सेवक भी थे जिससे उसका अस्तित्व परिमित हो गया था। उसने सात दिनों में दुनिया की सृष्टि की थी। यह कब की बात है? जब हज़रत मूसा ने अपने ग्रन्थ लिखे थे। आप जानते हैं मूसा को हुए हज़ारों वर्ष बीत गए। दुनिया में विप्लव हो चुका है। यह किस तरह का ईश्वर है, जो बढ़ता नहीं? हर एक वस्तु को बढ़ना और विकसित होना चाहिए। अब तो शैतान-सरीखा कोई प्रतिस्पर्द्धी (रक़ीब) तुम्हारे ईश्वर के समीप न होना चाहिए। उसकी सत्ता को परिमित करनेवाली कोई दूसरी वस्तु न होनी चाहिए। अब एक कारीगर, संसार के निर्माता या बनानेवाले के पेशे से उसकी हैसियत बड़ी होना चाहिए। अब ठीक समय आ गया है कि सारा संसार वेदान्त को ग्रहण करे। अब ठीक समय है कि सारा संसार साहसपूर्वक सत्य के इस फुफकारते हुए सर्प को उठाकर पकड़ ले। परम सत्य तुम्हारे पास आता है और तुमसे कहता है—"तुम परमेश्वर हो, परमेश्वर तुम से पृथक नहीं है, परमेश्वर इस स्वर्ग वा उस नरक में नहीं है, बल्कि तुम्हारा अपना आप (आत्मा) है।" इस भावना का यही अनुभव है कि तुम परम स्वतन्त्र हो।

भय से अपने मस्तिष्कों को क्यों पस्त करते हो और प्रार्थनाओं में क्यों अपनी शक्तियों को खपाते हो? अपनी सहज आन्तरिक प्रकृति का प्रतिपादन करो, सत्य को मत कुचलो, दिलेरी से निकल पड़ो, निर्भय होकर उच्च स्वर से पुकारो—"अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि।" यह तुम्हारा जन्म-स्वत्व (पैदायशी हक़) है।

साधारण लोगों के चित्त की वही दशा है, जो उस आवाज़ को सुनते समय हज़रत मूसा की हुई थी। हज़रत मूसा ग़ुलामी की हालत

में था, और सर्प देख कर काँपने लगा था। यही हाल लोगों का होता है, जब वे इस पवित्र ध्वनि को सुनते हैं कि "मैं शुद्ध ज्ञान, पवित्र सत्य ॐ हूँ। जब वे इसे सुनते हैं, तब वे थर्राते और हिचकते हैं। इसे पकड़ने की हिम्मत उनमें नहीं होती। नीचे के जैसे शब्द उन लोगों को सर्प की फुफकार के समान सुनाई पड़ते हैं :—"तुम स्वयं परमेश्वर हो, पवित्रों के पवित्र हो; दुनिया कोई दुनिया नहीं है; तुम सब में सब कुछ हो, परम शक्ति हो, जिस शक्ति का वर्णन कोई शब्द नहीं कर सकता; तुम न तन हो, न मन; तुम विशुद्ध 'मैं हूँ' हो, वही तुम हो।"

स्फटिक के पास से इन पीले, लाल या काले काग़ज़ के टुकड़ों को हटा दो, अपनी वास्तविक सत्ता में जाग पड़ो और अनुभव करो—"मैं वह हूँ" "मैं सर्व में सर्व हूँ।" लोग इससे भागते हैं। वे साँप से डरते हैं। अरे, साँप को पकड़ लो, और तब आश्चर्यों का आश्चर्य रूप यह सर्प तुम्हारे हाथ में पहुँचते ही शाही दण्ड हो जायगा। जब तुम्हें भूख लगेगी, तब यही फुफकारता हुआ सर्प तुम्हें खिलावेगा, प्यास लगने पर यही तुम्हारी प्यास बुझावेगा, यही तुम्हारे मार्ग से सब दुःखों और कठिनाइयों को साफ़ कर देगा।

जंगल में हज़रत मूसा ने इस डंडे से एक चट्टान छू दी, लो! चट्टान से कलकलाता हुआ निर्मल जल निकल पड़ा। जब इसराईल की सन्तान अपनी रक्षा के लिए भाग रही थी, तब उन्हें लाल समुद्र पार करना था। वह भयंकर समुद्र खुली हुई क़ब्र की तरह उन्हें निगल लेने को तैयार खड़ा था। ज़रत मूसा ने अपने डण्डे से उस लाल समुद्र (**R**ed **S**ea) को छू दिया और पानी फटकर दो टुकड़े हो गया, सूखी भूमि निकल आई और इसराईली पार उतर गये।

देखने में यह फुफकारता हुआ सर्प, यह सत्य भयानक जान पड़ता है, किन्तु तुम इसे उठा लेने और मज़बूती से पकड़े रहने की हिम्मत-भर कर लो, फिर तुम यह देख कर विस्मित होगे कि तुम विश्व

के सम्राट् हो, महा तत्वों के मालिक हो, नक्षत्रों के हाकिम हो और आकाशों के नियन्ता हो। तब तुम अपने को सब कुछ पाओगे। इस सत्य के बर्तने और इस दैवी सिद्धान्त के आलिंगन करने में लोग झिझकते हैं। किन्तु आगे बढ़ो, हिचको नहीं। इस सत्य को निर्भयता से ग्रहण करो। इसे अपनी छाती से लगाने की हिम्मत करो और इसे अपना आप बनाओ। सत्य का अनुभव करो, और यह सत्य तुम्हें स्वतन्त्र करेगा।

"अहं ब्रह्मास्मि"–न कहना पाप है। आत्मा को चुराना निकृष्ट चोरी है। "मैं मर्द हूँ या औरत" अथवा अपने आपको दीन-हीन कीट समझना झूठ और नास्तिकता है। कंजूस का स्वाँग मत खेलो। कृपण के घर में अटूट सम्पत्ति होती है, किन्तु वह एक कौड़ी भी नहीं निकालना चाहता। सारा संसार तुम्हारे अन्दर है, सम्पूर्ण सृष्टि तुम्हारी अपनी है, फिर क्यों इसे छिपाते हो? क्यों इसे काम में नहीं लाते? इसे अमल में लाओ। अपनी ही आत्मा के अमृत का डटकर पान करो। अपने निजी स्वाभाविक आन्तरिक साम्राज्य को क्यों नहीं लेते?

भारत में लोग इस परम सत्य के अनुभव को ऐसा मानते हैं, जैसे कोई भूला हुआ हार फिर से मिल जाय। एक मनुष्य अपने गले में एक बड़ा मूल्यवान् और लम्बा हार पहने था। किसी तरह वह उसकी पीठ पर सरक गया और वह उसे भूल गया। अपनी छाती पर उसे जगमगाता हुआ न देखकर वह उसे ढूंढ़ने लगा। किन्तु सब ढूंढ़ना व्यर्थ हुआ। उसने आँसू बहाये और वह अपना अमूल्य हार खो जाने पर बड़ा रंज करने लगा। उसने किसी से कहा––"यदि हो सके, तो मेरा हार ढूंढ़ दो।" तब किसी ने उससे पूछा,––"अच्छा, यदि मैं तुम्हारा हार ढूंढ़ दूं, तो मुझे क्या दोगे?" उसने उत्तर दिया––"जो कुछ तुम माँगोगे, वही दूंगा।" उस आदमी ने अपने मित्र के गले में हाथ डाला और हार खींचकर कहा––"यह है तुम्हारा हार। यह खोया

नहीं था, यह तो तुम्हारे गले में ही पड़ा था, किन्तु तुम इसे भूल गये थे।" कैसा सुखकर आश्चर्य है! इसी प्रकार तुम्हारा परमेश्वरत्व तुमसे बाहर नहीं है, तुम तो पहले ही से ईश्वर हो, तुम वही हो। यह कैसी विचित्र विस्मृति है, जिसके कारण तुम अपनी सच्ची आत्मा को, अपने सच्चे परमेश्वरत्व को भूल जाते हो। इस अज्ञान को दूर करो, इस तम का नाश करो। इसे हटाओ और तुम पहले ही से ईश्वर (ब्रह्म) हो। तुम स्वभाव से मुक्त हो। गुलामी की दशा में तुम अपने आपको भूल गये हो।

एक राजा स्वप्न में अपने आपको भिखारी की हालत में देख सकता है। वह स्वप्न देख सकता है कि मैं भिखारी हूँ, किन्तु यह भिखारीपन उसकी सच्ची बादशाहत में हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

ऐ राजाओं के राजा! इन सब शरीरों में मेरे प्रिय आत्मा! ऐ परम सम्राट्! ऐ कल्याण के सारभूत! ऐ प्यारे! तुम अज्ञान के स्वप्न में अपने आप को गुलाम न बनाओ। उठो और अपने परम प्रताप की दशा में शासन करो। तुम परमेश्वर हो, तुम और कुछ हो ही नहीं सकते। अन्दर की पूरी शक्ति से, हिचक, दुर्बलता और अशक्तता को दूर करके, ठीक विशुद्ध "मैं हूँ" या 'आत्मा में' कूद पड़ो। तुम परमेश्वर हो। वह और मैं एक हैं। कैसा सुखद विचार है! कैसी धन्य धारणा है!! यह सारी मुसीबतें हर लेती है और हमारे सारे बोझ उतार लेती हैं। अपने आप से बाहर मत भटको। अपने केन्द्र में जमे रहो, आर्कीमीडिस (Archimedes) ने कहा था—"यदि मुझे कोई स्थिर आधार, स्थिर बिन्दु मिल जाय, तो मैं दुनिया को हिला सकता हूँ।" किन्तु वह बेचारा उस स्थिर बिन्दु को न पा सका। स्थिर बिन्दु तुम्हारे अन्दर है। वह है तुम्हारी आत्मा। इसे पकड़ो, और तुम सारे संसार के संचालक हो।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

८

प्रश्नोत्तर (१)

[२६ दिसम्बर १९०२ हर्मिटिक ब्रादरहुड हाल, सन-फ्रांसिस्को, अमेरिका]

ऊँ का उच्चारण

प्रश्न——क्या ऊँ को बिना समझे-बूझे उच्चारण करने से कोई विशेष लाभ हो सकता है ?

उत्तर——हिमालय के जंगलों में रहनेवाले साधु ऊँ का उच्चारण करते हैं, या कुछ गाते-बजाते रहते हैं। बहुधा साँप, हिरन और जंगली पशु अपने स्थान छोड़कर साधुओं के पास आ जाते हैं। यद्यपि ये जंगली जानवर संगीत-विद्या के नियम भी कुछ नहीं जानते, ऊँ उच्चारण के बारे में भी कुछ नहीं जानते, फिर भी उन पर इसका प्रभाव पड़ता है। यदि केवल ध्वनि ऐसा अद्भुत प्रभाव उन साँपो और हिरनों पर डाल सकती है, तो ठीक समय पर नियमपूर्वक उच्चारण की हुई केवल ध्वनि-मात्र क्या आपके जीवन पर कोई प्रभाव न डालेगी ?

संगीत के हर एक गीत में तीन बातें होती हैं। एक तो गीत का अर्थ, दूसरे संगीत-विद्या के नियम, तीसरे गीत के शब्द या ध्वनि। यदि संगीत की इन तीनों बातों से आप भली भाँति परिचित हैं, तो

आपको संगीत से अद्भुत आनन्द मिलेगा । किन्तु यदि आप उसके एक ही अंग से परिचित हैं, तो आप कुछ अंश तक ही उसका मज़ा लूट सकते हैं । साँप और हिरन केवल संगीत की तानों को सुनते हैं, वे उसके अर्थ और उसके नियमों के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते, फिर भी उन्हें आनन्द आता है । इसी प्रकार कुछ लोग संगीत के नियमों का, जिन्हें इस विद्या के जाननेवालों ने बनाया है, आनन्द लेते हैं, उन्हें संगीत के अर्थ से कोई मतलब नहीं । दूसरे केवल संगीत के अर्थ का सुख भोगते हैं, उन्हें संगीत के नियमों की कुछ भी जानकारी नहीं होती । तीसरे केवल संगीत के नियमोपनियमों के सुख में ही मग्न रहते हैं । इसी प्रकार ॐ में भी तीन पहलू हैं । पहला केवल ध्वनि है, केवल मंत्र है, जैसा वह मुख से उच्चारण किया जाता है । दूसरा है अक्षर का अर्थ, जिसगा अनुभव 'भाव'––द्वारा होता है । तीसरा है ॐ को अपने चरित्र में उतार लेना अर्थात् उसे अपने कार्यों और अपने जीवन में गाना । जो मनुष्य इन तीनों प्रकारों से ॐ गाता है––अपने ओठों से इसका उच्चारण करता है, हृदय से इसका अनुभव करता है, और कर्म के द्वारा इसे गाता है, वह अपने जीवन को एक लगातार संगीत बना देता है । हर एक व्यक्ति के लिए वह ईश्वर है । यदि तुम उसे भाव-पूर्ण चित्त से उच्चारण नहीं कर सकते और न अपने कार्यों में उसे उतार सकते हो अर्थात् तुम उस पर अमल नहीं कर सकते हो, तो भी उसका उच्चारण न छोड़ना चाहिए । उसे केवल ओठों से ही उच्चारते रहो, वह भी निरर्थक न जायगा । यदि तुम उसे केवल भावपूर्वक गा सकते हो, कार्यों या वाक्इन्द्रिय के द्वारा नहीं गा सकते, तो भी किसी अंश तक तुम्हें लाभ होगा । यदि तुम उसे केवल कर्म द्वारा गा सकते हो, भोवनाओं तथा मुख के द्वारा नहीं गा सकते, तो यह भी अच्छा और श्रेयस्कर है । तात्पर्य यह, तुम उसे मुख से जपना शुरू करो, कालान्तर में भावपूर्ण और कर्म-मय गान स्वतः तुम्हारे द्वारा होने लगेगा ।

कुछ ऐसी चीज़ें होती हैं जिनके नाम लेने से ही मुंह में पानी भर आता है, जैसे नारंगी, नींबू इत्यादि । इनकी चर्चा का ही हमारे ऊपर एक प्रभाव पड़ता है और इनके खाने से तो निश्चयपूर्वक पूरा प्रभाव होता है । ठीक इस तरह ॐ की ध्वनि अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती, और यदि तुम उसे पूर्ण रूप से ग्रहण करो, तो फिर पूरा प्रभाव पड़ता है । प्रारम्भ में चाहे तुम्हें प्रभाव न मालूम पड़े, किन्तु निश्चय रक्खो, अन्त में वह अवश्य फल देगा ।

जल-गणित-विद्या से हमें मालूम होता है कि यदि एक ऐसा हौज़ हो जिसकी पेंदी में डाट लगी हो और उसमें हम पानी भरते जायँ, तो जितना ही पानी हम भरते जायँगे, उतना ही दबाव पेंदे पर बढ़ता जायगा; और इस विद्या के नियमों से हम यह हिसाब लगा सकते हैं कि इस डाट को ठेलकर पानी को पेंदे से बाहर निकाल देने के योग्य जल का काफ़ी दबाव पड़ने के लिए ठीक कितना पानी हमें हौज़ में डालना चाहिए । इसी तरह यदि आप अपनी देह के हौज में ॐ भरते जायँ, तो मानो दबाव बढ़ने के रूप में उसका प्रभाव पड़ता रहेगा, किंतु सर्व-साधारण की दृष्टि में प्रभाव का प्रकट होना एक बात है और प्रभाव का उत्पन्न होना दूसरी बात । दबाव बढ़ते-बढ़ते एक ऐसा समय आवेगा, जब आप देखेंगे कि हौज़ की पेंदी से डाट हट गई है और जल तुमसे फूट कर बहने लगा है । चाहे जिस समय तक प्रभाव प्रकट हो, किन्तु प्रभाव मौजूद ज़रूर होगा । एक दृष्टान्त है । एक नई ब्याही कन्या थी, मानो सरलता की साक्षात् मूर्ति । उसे बच्चा जनने का अनुभव नहीं हुआ था । अपने गर्भ के पहले महीने में उसे अपने स्वभाव में कुछ अन्तर समझ पड़ा । सरल तो थी ही, उसने सोचा, अब आगामी महीनों में कोई अन्तर न पड़ेगा । भारत में दुलहिन सास के घर रहती है, और सास अपनी बहू तथा उसके बच्चों की ज़रूरतों को पूरा करती है । युवती बहू एक दिन गम्भीर-भाव से अपनी सास से

कहने लगी—"अम्माजी ! अम्माजी ! जब मेरे बच्चा पैदा होने को हो, तब मुझे दया करके जगा देना, कहीं ऐसा न हो कि मेरे बिना जाने ही बच्चे का जन्म हो जाए।" अम्माजी ने उत्तर दिया—"प्यारी बहू ! घबराओ नहीं, जब समय आयेगा तब किसी को तुम्हें जगाने की ज़रूरत न पड़ेगी। तुम्हारी ऐसी हालत होगी कि तुम ख़ुद ही अपनी चीख़ों और रोने-धोने से अपने पड़ोसियों को जगा दोगी। गर्भ के दिनों में विचित्र परिवर्तन हो रहा था, उस पर प्रभाव पड़ रहा था, यद्यपि माता को उसका ज्ञान नहीं था। जब ठीक समय आता है, तब प्रभाव प्रकट हो जाता है। बस, इसी प्रकार इस ॐ मंत्र से पेट भरते रहो, अपने को पुष्ट करते रहो, इस पौष्टिक दूध को ख़ूब मन-माना पीते रहो, ठीक समय पर प्रभाव प्रकट हुए बिना न रहेगा। तुम्हें अधीर न होना चाहिए।

जब राम बच्चा था, तब वह और कई दूसरे बच्चे अनाज के कुछ दाने, जौ या चावल ले आते और आँगन की बगिया में गढ़े खोदते, फिर इन गढ़ों में दानों को जल-सहित डाल देते और अन्त में इन सबको ढक देते थे। इस काम में हम लोग इतने तन्मय हो जाते थे कि हमें भोजन तक की सुध न रहती थी। दाने क्या पैदा करते हैं, कैसे उगते हैं, यह देखने के लिए हम उद्विग्न हो जाते थे। उस जगह से, जहाँ कुछ ही मिनट पहले हमने अनाज, जौ और चावल के दाने बोये थे, क्या उगता है, यह देखने के लिए अधीर हो जाते थे। एक क्षण के लिए भी हम से वह स्थान छोड़ा नहीं जाता था। इस डर से कि कहीं ऐसा न हो कि हमारे अनजाने बीज उग आयें, हम बड़े चिंतित रहते थे और एक घण्टा भी न होता हम बहुत नगीच से उस स्थान की जाँच करते कि अँखुए निकले हैं या नहीं। किन्तु जब हमें कुछ भी दिखाई न पड़ता, तब मैं निराश हो जाता। हम लोग थोड़ी मिट्टी हटाकर देखा करते कि शायद भीतर कुछ निकला हो, लेकिन कुछ न देख पाते। जब वहाँ

कुछ न दिखाई पड़ता, तब थोड़ी मिट्टी और हटाते कि कुछ उगना शुरू हुआ है या नहीं। फिर और मिट्टी हटाते, पर दानों में कोई रूपान्तर न पाते। तुम इन बच्चों की तरह अधीर होकर पाव घण्टे में ही फल काटने की आशा न करो। तुम बीज बो सकते हो, किन्तु इतनी थोड़ी देर में फ़सल नहीं काट सकते। उसमें अन्ततः कुछ समय अवश्य लगेगा, पर प्रभाव अवश्य ही पैदा होगा।

मानसिक चिकित्सक

प्रश्न—लोग कहते हैं कि मानसिक चिकित्सक (Mental Healers) अपने लिए ऐसे कारण जमा कर रहे हैं जिनका परिणाम भावी जन्म में भयंकर रोग होगा। क्या यह सत्य है?

उत्तर—नहीं! मानसिक चिकित्सक जो कुछ कर रहे हैं उसका अवश्यंभावी परिणाम भावी जन्म में दारुण रोग कदापि नहीं है। मानसिक चिकित्सा में स्वयं ऐसी कोई बात नहीं है जिसका परिणाम दारुण रोग हों। यहाँ सब प्रकार के सांसारिक काम करनेवाले लोग हैं, क्या उसमें से किसी के कार्य का परिणाम दारुण रोग कहा जा सकता है? नहीं। मानसिक चिकित्सक तो साधारण लोगों की तरह चिकित्सा-कार्य करते हैं। यदि साधारण वैद्यों का काम भावी जन्म में ऐसे भयंकर परिणामों का उत्पादक हो सकता है, तो मानसिक वैद्यों का काम भी ऐसे दारुण फलों को पैदा करने वाला होगा। यदि वैद्यों को ऐसे कर्मों का फल भोगना नहीं पड़ता, तो मानसिकों को भी न भोगना पड़ेगा। राम से प्रश्न किया गया था कि वह मानसिक चिकित्सा क्यों नहीं करता? उस समय यह उत्तर दिया गया था कि राम की दृष्टि में शारीरिक जीवन इतने महत्त्व का नहीं है, जिस पर इतना विशेष ध्यान दिया जाय। ईसा अपनी रोग हरने की शक्तियों का पेशा नहीं करता था। जब वह

किसी को चंगा करता या जब कोई उसके द्वारा चंगा होता था, तो वह यही कहता था कि मैं ने कुछ नहीं किया, तेरे विश्वास ने ही तुझे चंगा किया है। यदि राम ऐसा करने लगे, तो नतीजा क्या होगा? हर एक व्यक्ति रोटी-दाल के लिए राम के पास आवेगा। कोई आकर कहेगा—"मेरे लड़के को चंगा कर दो, यह करो, वह करो" दूसरे आकर कहेंगे—"मैं चाहता हूँ कि समाज में ऊँचा स्थान फिर मिल जाय।" किन्तु ऐसी बातें व्यापारिक वृत्ति और बनियेपन की हैं। मानसिक चिकित्सा का व्यापार वास्तविक स्वाधीनता के मार्ग में हमें आगे नहीं बढ़ा सकता।

आत्मा का विकास

प्रश्न—क्या आत्मा स्थूल शरीर में रहते हुए अपने आपको पूर्णतः विकसित कर सकती है?

उत्तर—यहाँ पर 'आत्मा' शब्द को कुछ समझा देना चाहिए। यह पानी का एक बर्तन है और इसमें सूर्य प्रतिबिम्बित होता है। अब पानी एक बर्तन से दूसरे बर्तन में डालो। तुम देखोगे कि दूसरे बर्तन के जल में भी सूर्य ठीक उसी तरह प्रतिबिम्बित होता है, जैसे पहले बर्तन के जल में उसका प्रतिबिम्ब पड़ता था। जल दूसरे बर्तन से तीसरे बर्तन में पलट दो, सूर्य की छाया वहाँ भी वैसी ही पड़ रही है। इसी तरह तुम्हारे बाह्य शरीर या तुम्हारे स्थूल शरीर की तुलना एक कलस या मिट्टी के मटके से की जा सकती है। कलसे में भरे हुए जल की तुम्हारे सूक्ष्म शरीर से, जो मुख्यतः तुम्हारी इच्छाओं, मनोभावों और चित्त का बना है, अद्भुत समता है। मृत्यु के बाद सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर के एक बर्तन से दूसरे में बदल दिया जाता है। कुछ लोगों के अनुसार जन्मान्तर ग्रहण करनेवाला यह सूक्ष्म शरीर ही आत्मा है,

किन्तु वेदान्त के अनुसार ऐसा नहीं है। वेदान्त के अनुसार सच्चा स्वरूप अथवा तेजस्वी आत्मा सूर्यवत् है, जो स्थूल शरीर-रूपी पहले बर्तन के सूक्ष्म शरीर में ठीक वैसे ही प्रतिबिम्बित होता है, जैसा दूसरे में। अब शुद्धात्मा, वास्तविक स्वरूप, सब अवस्थाओं में सदा अपने को पूर्णतया स्पष्ट व्यक्त करता रहता है। शुद्ध तेजस्वी आत्मा में कोई परिवर्तन या उन्नति नहीं हो सकती, वह सदा पूर्ण है। यदि तुम 'आत्मा' शब्द से 'सूक्ष्म शरीर' समझते हो, तो उस अन्तिम अवस्था को प्राप्त करने के लिये जहाँ पुनर्जन्म बन्द हो जाता है, साधारणतः उसे अनेक जन्म या योनियाँ मिलती हैं। किन्तु यदि तुम मुक्ति के लिए सचमुच उत्सुक हो, तो इस जन्म में भी तुम पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त कर सकते हो, और पुनर्जन्म को फिर प्राप्त नहीं करना होगा।

मृत्यु क्या है? मृत्यु का अर्थ है शरीर-रूपी स्थूल बर्तन का टूटना। जब मृत्यु आती है, तब जल मानो एक स्थूल शरीर या बर्तन से दूसरे में पलटा जाता है? सूक्ष्म शरीर ने फिर जन्म लेकर दूसरी देह पाई है, पर इस दूसरे बर्तन में शुद्ध-स्वरूप ईश्वर ठीक वैसे ही प्रतिबिम्बित होता है जैसे पहले देह-रूपी बर्तन में होता था। मान लीजिये, शरीर-रूपी बर्तन अपनी इस बारी में ७० वर्ष के काल तक चलने के बाद टूट जाता है, तो जो द्रव-रूप सूक्ष्म शरीर इस बर्तन में है, वही तीसरे मिट्टी के बर्तन या देह में बदल दिया जाता है। यही पुनर्जन्म है। सच्ची आत्मा सूर्य की तरह एक रूप से सूक्ष्म शरीर में और स्थूल शरीरों के सब विभिन्न बर्तनों में प्रतिबिम्बित होती है। इस तरह पर शुद्ध आत्मा पुनर्जन्म से परे है। सम्पूर्ण पुनर्जन्मों का सम्पर्क केवल सूक्ष्म शरीर से है, न कि सूर्य अर्थात् सच्ची आत्मा से। अब इस बात को और भी स्पष्ट कर देना चाहिए।

आप जानते हैं कि सूर्य हर समय पूर्ण-रूप से चमकता रहता है, किन्तु जल में प्रतिबिम्बित उसकी प्रतिमा सदा पूर्ण या अविच्छन्न नहीं

होती। जब जल जमी हुई दशा में होता है, तब बरफ़ या हिम पर चमकनेवाला सूर्य उसमें प्रतिबिम्बित नहीं होता। जब पानी वायु-रूप में परिवर्तित हो जाता है, तब भी हम देखते हैं कि सूर्य की प्रतिमा उसमें प्रतिबिम्बित नहीं होती। इस प्रकार जल की तीन अवस्थाओं अर्थात् घन, तरल और वायु—रूप में से जल जब जमी हुई अवस्था में होता है, तब सूर्य की प्रतिमा प्रतिबिम्बित नहीं होती; जब जल तरल (बहनेवाली) अवस्था में होता है, तब सूर्य की प्रतिमा प्रतिबिम्बित होती है; किन्तु जब जल तीसरी या वायु-रूपी दशा में होता है, तब फिर हम सूर्य की प्रतिमा का प्रतिबिम्ब नहीं देखते। पानी की दशा के परिवर्तनों के साथ-साथ सूर्य की प्रतिमा में परिवर्तन होते हैं। ये मिट्टी के बर्तन या स्थूल शरीर वानस्पतिक रूप, पशु-रूप और मनुष्य-रूप हैं। एक समय होता है, जब सूक्ष्म शरीर घन अवस्था की तरह बड़ी ही स्थूल प्रकृति का होता है। उस दशा में सूर्य की प्रतिमा प्रतिबिम्बित नहीं होती, यद्यपि सूर्य ऊँचाई पर सामान-भाव से चमका करता है। पौधे और नीची श्रेणी के जीव-जन्तु बढ़ते और उन्नति करते हैं; किन्तु उनमें "मैं यह कर रहा हूँ" का कोई विचार नहीं होता। 'कर्तृत्व-भाव' की वहाँ ज़रा-सी भी झलक नहीं होती, दूसरे शब्दों में शुद्ध आत्मा की मूर्ति का कोई चिह्न नहीं होता। प्रकृति के सम्पूर्ण प्रसार की भाँति उनमें सारी उन्नति या बढ़ती सूर्य के द्वारा हो रही है, किन्तु उनमें सूर्य का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। जैसे हिमालय की चोटियों या शिखरों पर सूर्य बरफ़ को समेटता या गलाता तो है, पर उसके द्वारा प्रतिबिम्बित नहीं होता। वानस्पतिक और निम्नतर श्रेणी के जीव-जन्तु आत्मा-रूपी सूर्य की शक्ति और करतूत से उठाये और बढ़ाये जा रहे हैं, विकास और उन्नति पा रहे हैं; किन्तु बाह्य क्षुद्र शरीर के लिए उनमें आत्मा-रूपी सूर्य के वास्तविक कर्तृत्व-भाव और शक्ति का कुछ भी विनियोग नहीं है। उनमें प्रोमीथियस (Prometheus) के स्वर्ग

से अग्नि चुराने की भाँति* कोई भी बात नहीं है, व्यक्तिगत आत्म-श्लाघा का—"मैं यह करता हूँ और वह करता हूँ"—कुछ भी विचार या भाव नहीं है।

सूक्ष्म शरीर-रूपी जल अधम श्रेणी के बर्तनों से होता हुआ क्रमशः मनुष्य नामक सुन्दर पात्र में पहुँचता है, और उस जल में, जो द्रव और पारदर्शी दशा में है, परम कर्ता सूर्य या आत्मा का अद्भुत प्रतिबिम्ब पड़ता है। यद्यपि यहाँ भी पहले की तरह असली कार्यकर्ता सूर्य, केवल आत्मा है, पर यहाँ अहंकार या उत्तरदायित्व पूर्ण कर्ता के रूप में असली आत्मा की प्रतिमा या छाया सूक्ष्म-शरीर में झलकती है। "मैं यह करता हूँ और वह करता हूँ" का यह विचार वनस्पतियों और निम्नतर जन्तुओं में अनुपस्थित है। मनुष्य में मिथ्या आत्मा की कल्पना प्रकट होती है। "मैं कर्ता हूँ, मैं करनेवाला हूँ", यही बाह्य वा मिथ्या आत्मा है, जो जल में सूर्य की प्रतिबिम्बित प्रतिमा है। यह अहं, यह बाह्य अपना आप झूठा और असत् है। सच्चा कर्ता और असली काम करनेवाला ईश्वर सब कुछ करता है। वह ज़िम्मेदार मालिक है, और अज्ञान-वश यह ज़िम्मेदारी विशुद्ध सूक्ष्म शरीर द्वारा ओढ़ी और हृदय-गत कर ली जाती है। इस कर्तृत्व-भाव का यह अपनाया जाना झूठे, मायामय, क्षुद्र आत्मा का विधान करता है। यह मिथ्या अहम् उसी तरह असत्य है, जैसे जल में प्रतिबिम्बि असत्य है। चक्षु-चिकित्सक (Opticians) गणित से सिद्ध करते हैं कि दर्पण या जल में पड़ने-वाला प्रतिबिम्ब दिखाऊ या भ्रम-मात्र है। इसी तरह यह उत्तरदायी स्वार्थपरायण अहं केवल दिखाऊ या भ्रम-मात्र है। तरल या सूक्ष्म शरीर में विकास सूर्य के द्वारा होता है। सूर्य-रूपी आत्मा या ईश्वर

---

*प्रोमीथियस यूनानी की पौराणिक कथाओं में वह व्यक्ति है, जिसने मनुष्य-मात्र की भलाई के लिए स्वर्ग से अग्नि को चुराया, और इस प्रकार जीयस (Zeus) के अत्याचारों से मनुष्य को बचाया।

की रोशनी और गरमी को सूक्ष्म शरीर अधिकाधिक ग्रहण करता और सोकता है, और इस प्रकार अपनी शारीरिक दशा स्थूलतर से सूक्ष्मतर में बदलता है। जब साधारण मनुष्य निज-स्वरूप या आत्मा का प्रकाश और ज्ञान अधिकाधिक मात्रा में सोकता या ग्रहण करता है, तब सूक्ष्म शरीर विकास को प्राप्त होता है, उसका सूक्ष्म शरीर समय पाकर मानो वायु-रूप हो जाता है, और वायुरूप होकर, यद्यपि स्थूल शरीर के पात्र में अब भी निबद्ध है, तथापि वह सूर्य की प्रतिमा को प्रतिबिम्बित नहीं करता। मिथ्या आत्मा वा प्रतिमा की सूर्य से अभिन्नता हो जाती है। यहाँ फिर वनस्पतियों और निम्नतर जन्तुओं के मामले की भाँति, हम ज़िम्मेदारी की कोई कल्पना, "मैं यह कर रहा हूँ" का कोई विचार, "मेरे कृतज्ञ हो" ऐसी कोई बलवती माँग हम नहीं पाते। बल्कि ऐसी वृत्तियाँ सब लोप हो जाती हैं। यहाँ मिथ्या आत्मा वा सच्चे आत्मा की प्रतिमा अब नहीं दिखाई देती; सर्वाधिकार स्वाधीन-रखनेवाली व्यापारिक वृत्ति नष्ट हो जाती है; अपहरणकारी स्वार्थी अहंकार (अहं) से पीछा छूट जाता है।

सामान्यतः वायुओं को एक पात्र से दूसरे पात्र में नहीं उँडेला जा सकता। घन और तरल द्रव्य ही एक बर्तन से दूसरे बर्तन में पलटे जा सकते हैं। किन्तु बर्तन टूट जाने पर वायु (गैस) जो उसमें होती है, हवा में फैल जाती है। अतएव हिन्दू-मात्र का उद्देश्य उस अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था में पहुँचना है, जहाँ वे फिर पुनर्जन्म के अधीन न हों। हिन्दू-माता की सर्वोच्च आकांक्षा ऐसी सन्तान उत्पन्न करना है जो मुक्त होगी और जिसका पुनर्जन्म कदापि न होगा।

सूक्ष्म शरीर

प्रश्न——मुक्त मनुष्य की आत्मा मृत्यु के बाद सूक्ष्म शरीर के रूप में बनी रहती है या लीन हो जाती है?

उत्तर—जब कोई गैस किसी बर्तन से निकाल दी जाती है, तब वह सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हो जाती है। इसी तरह मुक्त मनुष्य का सूक्ष्म शरीर दुनिया का शरीर हो जाता है।

प्रश्न—सूक्ष्म शरीर किन पदार्थों से बनता है?

उत्तर—सूक्ष्म शरीर मनोवेगों, इच्छाओं, मनोभावों, वेदनाओं और संकल्पों से बनता है। मुक्त मनुष्य की इच्छाएँ व्यक्तिगत नहीं होतीं। उनमें स्वार्थपरता का कोई चिह्न नहीं होता, और स्वार्थ-शून्य, व्यक्तित्व-हीन, सार्वभौम इच्छाओं का बना हुआ वह सूक्ष्म शरीर मानो वायु-रूपी (गैस की) दशा में होता है और इस वायु (गैस) को धारण करने-वाला स्थूल पात्र जब टूट जाता है, तब फिर गैस सघन समूह नहीं रह जाती, बल्कि समग्र विश्व में लीन हो जाती है।

फ़ारस के बादशाह महान् कैखुसरू के सम्बन्ध में कहा गया है कि वह जब तक इस दुनिया में जिया, केवल जनता की सेवा और भलाई के लिए जिया। मरते समय उसने अपने इच्छा-पत्र (वसीयत-नामे) में आदेश दिया कि "मेरा शव शानदार मक़बरे में न दफ़नाया जाय, उसके टुकड़े-टुकड़े काटकर सम्पूर्ण फ़ारस-साम्राज्य में वितरण कर दिया जाय, ताकि खाद का काम दे।" मुक्त मनुष्य के सूक्ष्म शरीर की ठीक यही गति होती है। उसका सूक्ष्म शरीर सारे संसार भर में बाँट या फैला दिया जाता है। हर एक व्यक्ति उसमें हिस्सा लेता है, उसका माँस काट-काटकर खाता है और लोहू पीता है, मानो उसके माँस और लोहू को हड़प कर जाता है। उसका सूक्ष्म शरीर टुकड़े-टुकड़े करके सारी दुनिया द्वारा खाया जाता है। यह है अहंकार को हवा में उड़ा देना (बर्बाद करना)। वह मनुष्य, चाहे अपना मुंह खोले या नहीं, वह ग्रन्थकार हो या न हो, सर्व-साधारण के सामने आवे या न आवे, किन्तु वह मानवजाति की अपूर्व सेवा करता है। वह अद्भुत सुधारक है। राजाओं के सारे ख़ज़ानों से उसे किसी वस्तु की भी इच्छा नहीं है।

दुनियाँ की सारी पुस्तकें और धर्म-पुस्तकें उसे कुछ भी नहीं सिखा सकतीं। बादशाहों और ज़ालिमों की रीझ और खीझ उसके लिए निरर्थक है। जब तक वह जीता है, उसकी दयामय उपस्थिति, उसका दिव्य दर्शन पवित्रता और सुख का प्रसार करता रहता है। उसके मरने पर दुनिया विलक्षण रूप से सुधर जाती है।*

मान लो कि सूर्य-ताप के कारण इस स्थान पर वायु विरल हो जाती है और विरल होने पर स्वभावतः ऊपर चढ़ती है, अपनायहाँ का स्थान ख़ाली करके उठ जाती है। नतीजा क्या होगा ? उसकी जगह भरने को, शून्य स्थान ग्रहण करने को चारों ओर से हवा झपटेगी। इस तरह सम्पूर्ण आकाश-मंडल में हलचल और उथल-पुथल की घटना होती है। जो मनुष्य पूर्ण है, जो शरीर के बारे में कभी कुछ नहीं सोचता, और जिसे कोई इच्छा नहीं है, वह फिर जन्म नहीं लेता। उसकी मृत्यु होने पर उसका सूक्ष्म शरीर, जिसने आत्मा-रूपी सूर्य को ख़ूब पान किया और सत्य-रूपी गरमी या प्रकाश को सोख लिया है, विश्व में अपना स्थान ख़ाली कर देता है, और विरल वायु की तरह इस दुनिया से ऊपर उठ ज़ाता है। उसका स्थान ख़ाली हो जाने से और उसका पुनर्जन्म न होने के कारण, एक दैवी-नियम के अनुसार उसके सब अत्यन्त नगीची उसके स्थान की पूर्ति के लिए ऊपर उठाये जाते हैं, और जो उनके बाद हैं

---

*स्वामी राम की महा समाधि लेते ही भारत क्या, सारे संसार में हलचल मच गई। राम का सन्देश है—

"Whether working through many souls or alone, I seriously promise to infuse true life and dispel darkness and weakness from India within ten years; and within the first half of the twentieth century, India will be restored to more than its original glory, let these words be recorded."

वे भी इसी तरह एक दर्जा चढ़ जाते हैं, और इसी प्रकार समग्र दुनिया एक दर्जा चढ़ जाती है। तात्पर्य यह कि दुनिया में आप से आप हलचल मच जाती है। यह कैसा अपूर्व, अद्‌भुत सुधारक है। उसे अपने ओंठ खोलने की आवश्यकता नहीं पड़ती, फिर भी दुनिया का उत्थान हो जाता है।

आर्कीमीडिस (Archimedes) ने कहा—"यदि मुझे खड़े होने को स्थल मिल जाय, तो दुनिया को हिला दूं।" दुनियाँ को हिलाने के लिए एक स्थिर-बिन्दु या आलंब पाने में वह असफल रहा। वेदान्त कहता है कि वह स्थिर बिन्दु तुम्हारे अन्दर है। वह है। आत्मा। उसे प्राप्त करो और तुम समग्र संसार को हिला सकते हो।

मिथ्या आत्मा के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहे जाते हैं। बर्तन के द्रव पदार्थ में यह सूर्य का प्रतिबिम्ब है। पदार्थ-विद्या सिद्ध करती है और दृग्-विद्या (Optics) स्पष्ट करती है कि यह प्रतिबिम्ब मिथ्या है; सम्पूर्ण प्रकाश बाहर है और द्रव-पदार्थ में जो प्रतिबिम्ब है, वह केवल प्रतिबिम्बित प्रकाश है। प्रतिबिम्ब हमारा ही अनुमान है, इन्द्रियों का केवल हथफेर है; पानी या गिलास में ऐसी कोई वस्तु नहीं है। प्रतिबिम्ब भ्रम के सिवा और कुछ नहीं है। अब, यह देखने-मात्र प्रतिबिम्ब पानी या द्रव-पदार्थ की गतियों से प्रभावित होता है, उसी मात्रा में यह भी संक्षुब्ध होता है जितना जल या द्रव पदार्थ संक्षुब्ध होता है।

बालों को कौन बढ़ाता या रक्त को कौन बहाता है? क्या इस मिथ्या

अर्थात्

चहे बहुतों के द्वारा चहे तनहा, सच्चा जीवन करूँगा मैं पैदा।
भारत से अन्धकार दूर करूँ, और कमज़ोरी को भगा दूंगा।
दस बरस में यह वायदा है पक्का, नोट कर लो इसे मैं हूँ कहता।
इसी अर्ध बीसवीं सदी के ही अन्दर ही अन्दर भारत की महिमा।
पहले से भी ज्यादा बढ़ जावे, राम ने यह भविष्य प्रकाश किया।

क्षुद्र, अधिकार-लोलुप, स्वत्व-स्वायत्तकारी 'अहं' के ये काम हैं ? कदापि नहीं। यह क्षुद्र, उत्तरदायी कहा जानेवाला 'अहं' मस्तिष्क में विचार का प्रेरक नहीं है। इस भ्रमात्मक मलिन अहंकार को परे फेंको और अपने सच्चे शुद्ध अहंकार का अनुभव करो। तुम विश्व के स्वामी हो; तुम प्रकाशकों के प्रकाश हो, पवित्रों के पवित्र हो।

हम देखते हैं कि सुषुप्ति-अवस्था में सूक्ष्म शरीर कुछ समय के लिए मानो घन-अवस्था में लौट जाता है। रुधिर बहता है, भोजन पचता है, किन्तु "मैं पचा रहा हूँ" का कोई विचार नहीं है। स्वप्नावस्था में सूक्ष्म शरीर घन-अवस्था को त्याग देता है और द्रव-रूप हो जाता है; सूर्य का प्रतिबिम्ब उसमें पड़ने लगता है और तुम फिर कहने लगते हो "मुझे उसकी इच्छा है, मैं यह करता हूँ।" वह स्वार्थी, ज़िम्मेदार, इच्छाकारी आत्मा, वह प्रतिबिम्ब, पुनः तुम्हारे पास आ जाता है। यदि यह स्वार्थी व्यक्तित्व सत्य होता, तो सदैव रहता। गाढ़ निद्रा-अवस्था में वह क्यों नहीं रहा ? वह क्यों नहीं टिका ? वह गाढ़ निद्रा-अवस्था में नहीं रहा, यही तथ्य सिद्ध करता है कि आपका यह कीर्तिकामी 'अहं' एक भ्रम है। इससे ऊपर उठो। तुम सूर्यों के सूर्य हो, पूर्ण आनन्द हो, तत्त्वरूप हो, तुम वही हो, और कुछ नहीं।

सामान्य लोगों के लिए यही कठिनता है कि वे अपने आपको यह मिथ्या अहंकार, यह झूठा-प्रतिबिम्ब समझते हैं। वे इसे नहीं छोड़ सकते। सारे गड़बड़ का यही कारण है।

पानी बहता है। उसमें हिलकोरें, लहरें और तरंगें उठती हैं, किन्तु इन सब का कारण सूर्य का कर्म है, और जल में पड़नेवाले सूर्य के प्रतिबिम्ब का हाथ इसमें ज़रा भी नहीं है, बल्कि जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब उतना ही हिलता-डुलता और संक्षुब्ध होता है जिस मात्रा में जल गड़बड़ होता है। ठीक इसी तरह सूक्ष्म शरीर जल के तुल्य है। सच्ची आत्मा की शक्ति के द्वारा वह संक्षुब्ध होगा, उसमें हिलकोरें

आवेंगी, तथापि मिथ्या अहं (प्रतिबिम्ब) इस तरह उद्विग्न होता है, मानो जल की सारी हलचल का वही कारण है। जल में प्रतिच्छाया का अर्थ है, चित्त, शरीर आदि से अभेदता स्थापित करना। यदि शरीर रोगी है, तो तुम कहते हो--"मैं बेकाम हो गया, मैं रोगी हूँ"। ठीक इसी लिए क्योंकि तुम अपने आपको देह या मन से अभेद समझते हो। वेदान्त कहता है, इस मिथ्या अभेदता को त्याग दो और तुम ठीक हो जाओगे। तन या मन के किसी दोष से तुम्हें उद्विग्न नहीं होना चाहिए। इस झूठे आत्मा के कारण यह मिथ्या भावना ही तुम्हारी सब व्यथाओं का हेतु है।

आत्मा के विकास का पुनरुत्तर

प्रश्न---भौतिक शरीर में होते हुए क्या आत्मा अपने आपको पूर्णतया प्रकट कर सकता है?

उत्तर--'आत्मा' शब्द का जैसा तुम अर्थ करोगे, उस पर यह उत्तर निर्भर है। आत्मा से क्या प्रयोजन है? क्या मन आत्मा है? बर्कले (Berkeley), मिल (Mill), हैमिल्टन (Hamilton), रीड (Reid), सब-के-सब मन और आत्मा को एक समझते हैं। इस अर्थ में आत्मा की उन्नति अनिश्चित है। यदि 'आत्मा' शब्द से तुम्हारा मतलब वह है, जिसे हमने मनुष्य में सत्यता का प्रतिबिम्ब कहा है, तो प्रश्न घटित नहीं होता। यदि 'आत्मा' शब्द से सच्ची आत्मा अभीष्ट है, तो किसी परिवर्तन या उन्नति की संभावना के लिए कोई स्थान नहीं है। किन्तु साधारणतः अधिकांश लोगों के लिए 'आत्मा' शब्द मिथ्या, कल्पना-मात्र है, कोरा नाम है, जिसका उनके लिए कोई निर्दिष्ट महत्व (उपयोग) नहीं है। ये लोग इस मामले पर अपने मत आप ही स्थिर करते रहें।

६

क्या किसी समाज विशेष की आवश्यकता है?

[गोल्डन गेट हाल, सन फ्रांसिस्को, २६ जनवरी, १६०३]

प्रश्न—स्वामीजी की दी हुई इन सच्चाइयों का अनुसरण करने के लिए क्या यह सर्वोत्तम न होगा कि हम अपना एक स्वतन्त्र समाज स्थापित करें?

उत्तर—जाति-भेद और साम्प्रदायिकता को तोड़ना राम का एक उद्देश्य है!

यह सत्य है कि सभा चलाकर या एक समाज बनाकर सत्य का पक्ष पुष्ट किया जा सकता है, किन्तु इससे प्रायः हित की अपेक्षा हानि अधिक होती है।

यदि कोई समाज या सभा बनाई जाय, तो वह अन्य सभाओं-सरीखी न होनी चाहिए। राम न तो किसी को गुलाम बनाना चाहता है और न किसी के कंधे पर वेदान्त का जुआ रखना। तुम सब को किसी भी दूसरी सभा में उपस्थित होने और नवागतों के विचार सुनने की स्वाधीनता है। जो मेरे हैं, वे मेरे हैं, वे मेरे पास आ जायेंगे। यदि तुम दूसरे वक्ताओं से आकर्षित हो, यदि तुम्हारे लिए इसमें या उसमें कुछ सार हो, तो उनके पास जाओ। प्रत्येक व्याख्याता राम है। कृष्ण मैं हूँ, मोहम्मद मैं हूँ; सब को स्वच्छन्दता से सुनो। राम नहीं चाहता कि

तुम उसके गुलाम हो जाओ ! प्रकाश को मत रोको। साथ ही राम चाहता है कि तुम इस सत्य से लाभ उठाओ।

सत्य जो इतना प्राचीन है जितना हिमालय की सफ़ेद शिरवाली चोटियाँ हैं और सत्य जो हज़ारों-लाखों साल पहले गंगा के तट पर गाया गया था, यह वही सत्य है जिसे इमर्सन (Emerson), ह्विटमैन (Whitman) और अनेकों ने सोचा-समझा है, और यह वही सत्य है जो उन्हें मस्ती में लाता है। आजकल के समाजों और सभाओं द्वारा हज़ारों रूपों में उपस्थित किया जानेवाला वही सत्य कहीं पूर्णतः और कहीं अंशतः प्रकट होता है। वही सत्य, जिसकी चर्चा तुम्हारे अख़बारों और पत्रों में होती है, सुन्दरता से उपस्थित किया जा सकता है। किन्तु सत्य बदला नहीं है, जैसा सहस्रों वर्ष पूर्व वह था, वैसा ही आज भी है। किन्तु राम कहता है कि सत्य को बड़ी ही सुन्दरता से वह उपस्थित करता है, और यदि आप इन पुस्तकों को पढ़ें, तो आप देखेंगे कि राम ने किस आन-बान-शान और विलक्षणता के साथ इस सत्य का वर्णन किया है। कुछ लोग राम के वाग्विलास (oratory) का मज़ा नहीं ले सके, क्योंकि लोगों की रुचि के अनुसार उसमें न तो कोई मसख़रापन था और न चटपटा मसाला। हाँ, राम यदि सत्य से डिगे और एक ऐसा स्वर ग्रहण करे जिसमें चापलूसी और मसख़रापन हो, जो तुमको अच्छा लगे, तो राम को सुनने के लिए अधिक संख्या में लोग जमा होंगे। किन्तु राम किसी व्यक्ति की रुचि के अनुसार चटपटा भोजन देने के लिए सत्य के शिखरों से नहीं उतरा और न कभी उतरेगा।

ईसा ने केवल ग्यारह शिष्यों को ही उपदेश दिया था; किन्तु वायुमण्डल ने उन शब्दों को संचित किया, आकाशों ने उन्हें जमा किया, और आज करोड़ों मनुष्य उन्हें पढ़ते हैं। धूल में मिलाया हुआ सत्य फिर उठेगा।

हो सकता है कि इस विचार को अनेक लोग प्रकट कर रहे हों, किन्तु राम का ढंग उसी विचार को प्रकट करने का है, जिसे आजकल के पत्र प्रचार कर रहे हैं। वह किसी आवश्यकता की पूर्ति करेगा और कुछ हित करेगा। कुछ का इस ढंग से उपकार होगा, और दूसरों का दूसरे ढंगों से लाभ होगा; परन्तु फिर भी लाखों मनुष्यों को राम के ढंग से बड़ा लाभ होगा। राम कहता है कि यदि तुम्हारा इसमें अनुराग है, तो इसे ले लो, इसे बढ़ाओ और इसे हाथोहाथ हर एक को क्या, सबको पहुँचाओ। यदि राम के चले जाने पर तुम कोई सभा संगठित करो, तो इस स्वामी की रचनाएँ ले लो। इमर्सन, ह्विटमैंन, स्पेंसर और दूसरों की रचनाएँ ले लो। ऐसी सभा बनाओ जो किसी नाम से बँधी न हो, जिसका उद्देश्य हो सत्य की वास्तविक बढ़ती, और यदि उस सभा में कोई ऐसा हो जिसके पास कोई मौलिक वस्तु हो, अथवा अध्ययन करने या पढ़ने में कुछ उपयोगी बातें उनके ध्यान में आई हों, तो वे सभा के सामने ये बातें रख सकें, जिससे सबका हित हो। निजी ध्यान में यदि कुछ नये विचार किन्हीं सदस्यों को सूझ पड़ें, तो वे उनकी सूचना दें। किन्तु यह सब स्वाभाविक तौर पर हो, नियमों आदि के अनुसार नहीं।

यह एक सीटी है जो बजाई जाने पर बुलबुल की आवाज़ देती है। हम जब चाहें इसे बजा सकते हैं और बुलबुल की ध्वनि पा सकते हैं, किन्तु ध्वनि स्वाभाविक नहीं है। बुलबुल का साभाविक गान देश-काल या नियम से नहीं बँध सकता। जब उसका जी चाहेगा, तब गावेगी, न कि जब तुम उसके पास पहुँचो और कहो—"ऐ बुलबुल, गा।" सो तुम देखोगे कि बोलने या लेक्चर देने का समय नियत कर देने से कुछ शर्तें लग जाती हैं, और अत्युत्तम परिणाम हाथ नहीं लगते।

हाल (Hall) के किराये, तथा इसलिए कि और भी रुपया

कमाया जाय, नियत नियमों की आवश्यकता है, किन्तु ये सब नियम सत्य का खून करते हैं। यह है चाँदी के तीस टुकड़ों पर सत्य के ईसा को बेचना।

राम तुमसे कहता है कि यदि तुम सभा बनाना चाहते हो, तो उसे स्वाभाविक क्रम पर बनाओ और वर्तमान सभाओं की नक़ल न करो। हो सकता है कि यह अपने ढंग की पहली हो।

ईसाई सम्प्रदाय का गिर्जा स्वयं एक भूल है। यद्यपि उसने बड़ा हित किया है, किन्तु अपने अनुयायियों के इर्द-गिर्द दीवारें खड़ी करके और ईसाई इंजील के सिवा किसी दूसरे सूत्र से सत्य ग्रहण करने में उन्हें रोककर उसने उसी हिसाब से हानि भी की है। इसी तरह बौद्ध, मुस्लिम और अन्य बहुतेरे सम्प्रदाय स्वयं भयंकर भूल हैं, क्योंकि वे अपने अनुयायियों को संकीर्ण सीमाओं में संकुचित कर देती हैं और किसी दूसरे स्रोत से उन्हें सत्य प्राप्त करने में रोकती हैं। तुम्हें उसी दरवाज़े या खिड़की से स्वर्ग पहुँचना होता है, किसी दूसरे से नहीं।

किसी भी दरवाज़े या खिड़की से तुम्हें आकाश की ओर देखने का अधिकार है, यहाँ तक कि तुम्हें घर छोड़ने, दरवाज़ा या खिड़की छोड़ने और खुले मैदान में आ सारे स्वर्ग का मज़ा लूटने का अधिकार है। इस लिए राम चाहता है कि दूसरी सभाओं की तरह अस्वाभाविक विधि पर इस सभा की रचना न हो, वरन् अत्यंत स्वाभाविक विधि पर उसकी रचना की जाय। सदस्य किन्हीं बन्धनों से न बँधें, वे स्वाधीन हों। ऐसी सभा हो जिसके सदस्य, बुलबुल की तरह, जब इच्छा करें अथवा जब प्रेरणाधीन हों, तब व्याख्यान दें। बुलबुल जब गाने को विवश की जाती है, तब उसके गाने की सारी माधुरी चौपट हो जाती है। अपने को बनावटी सीढ़ियों का-सा न बनाओ, बुलबुल की ध्वनि की नक़ल न करो। नियमों और क़ानूनों से न बँधो। **सत्य बँधनों से नहीं बाँधा जा सकता।**

राम की सर्वोत्तम रचनाएँ हिमालय के गंभीर वनों में लिखी गई हैं, जहाँ कोई मनुष्य नहीं सुनता था। वहाँ राम वन के वृक्षों को गाकर सुनाता था, वन की वायु ने ध्वनि को ले लिया और दूर-दूर उसकी प्रतिध्वनि की, उन रचनाओं का प्रचार होने लगा। किन्तु राम जब कभी किसी सभा के सामने बोलने को लाचार किया गया और नियमों तथा विधियों के अनुसार बोला, तब उसके प्रयत्न अच्छे नहीं रहे। वह अस्वाभाविक था और इसलिए सुन्दरता चली गई। कभी-कभी जब केवल एक मनुष्य आपका श्रोता होता है, तब सत्य अधिक सुन्दरता और शान से आता है। सत्य श्रोताओं की एक या अधिक संख्या की परवाह नहीं करता। भावना को ग्रहण कर लो और धीरे-धीरे सारा संसार सुनेगा।

तुम किसी समाज के क्यों हो जाओ? समाज तुम्हारा है? यह लो, तुम एक बार में बहुत कम हवा अपने फेफड़ों में श्वांस से लेते हो, और तथापि दुनिया की सारी हवा तुम्हारी है। क्या ऐसा नहीं है? सारा वायुमण्डल तुम्हारा है, सम्पूर्ण वायुमण्डल तुम साँस से खींच सकते हो। भारत, जापान, चीन, इंगलैण्ड, अमेरिका की हवा राम की है और राम तुम भी हो। हिमालय की पवन अपनी मधुर सुगन्ध के सहित तुम्हारी है। हवा पर किसी का मालिकाना अधिकार नहीं है। इसी तरह सत्य या ज्ञान पर किसी का मालिकाना अधिकार नहीं है। दुनिया का सम्पूर्ण धर्म, जगत् का सम्पूर्ण सत्य तुम्हारा है।

जब तुम साँस लो, तब इस विचार पर सोचो और इस भाव को अनुभव करो कि जिस तरह यह देह सारे संसार की हवा की साँस ले रही है, उसी तरह मन सारे संसार के सत्य का वारिस या उत्तराधिकारी है।

सारे संसार के सत्य का साँस लो, उसे सब बातों से इमर्सन

(Emerson), ह्विटमैन (Whitman) और दूसरों से, उपनिषदों, गीता आदि सबसे बटोरो। वे सब स्रोत तुम्हारे हैं। उन्हें अपना समझो।

जब तुम कोई पुस्तक पढ़ने को उठाओ, उसके लेखक का नाम न देखो। ऐसी पुस्तकें प्रकाशित होने दो, जिनमें उपनिषदों की तरह लेखक का नाम न हो।

उपनिषद्कारों ने अपने विचारों को दुनिया को देकर कोई साख अपने लिए नहीं ली। भारत के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ, षट्दर्शनों में कहीं भी रचयिता का नाम नहीं है। उस सर्वाधिकार-लोलुप वृत्ति से शून्य, इस प्रभुताशील अहं से मुक्त, और "मैं सत्य हूँ" की वृत्ति से परिपूर्ण, निष्पक्ष होकर ग्रन्थाकार अपना काम करता है। "मैं सत्य हूँ" यह अनुभव करना ही मेरे लिए यथेष्ट आनन्द है। "मैंने सौ पुस्तकें लिखीं, मैं ५० लाख का धनी हूँ", इस विचार में क्या सुख रक्खा है ? सच्चा सुख तुम्हारे पास यह अनुभव करने से आता है कि "मैं सम्पूर्ण हूँ, परम सत्य हूँ, प्रतापी, अविनाशी आत्मा हूँ, तत्त्व-स्वरूप हूँ।" यह सुख तुम्हारे सब सांसारिक व्यक्तिगत सुखों और हर्षों को तुच्छ बना देता है।

इसलिए साँस लो और जब तुम साँस लो तब यह भान और अनुभव करो कि संसार की प्रत्येक वस्तु तुम्हारी है। अनुभव करो कि समग्र संसार की वायु तुम्हारी है, समग्र संसार की सम्पूर्ण सुन्दरता और प्रेम तुम्हारा है, ठीक जैसे फेफड़ों में गुजरती हुई हवा तुम्हारी है, जैसे तुम्हारी नसों में खून का प्रत्येक बूंद प्रत्येक सेल (Cell) का है। तुम्हारी देह का प्रत्येक सेल (Cell) तुम्हारी देह के रुधिर के प्रत्येक बूंद का मालिक है। इसी प्रकार जब तुम इस विचार की साँस लो, तब अनुभव करो कि सम्पूर्ण ज्ञान, शक्ति, सत्य, सुख, सब सिद्धान्त, सब मत, कृष्ण, मोहम्मद, राम, ईसा, सब तुम्हारे हैं। इस क्षण

तुम्हारे द्वारा जो कुछ बह रहा है, केवल उसी को अपने अन्तर्गत का मत समझो।

अब विषादों या उदासी की इस दशा से अपने आपको चंगा करने के उपाय पर कुछ कहा जायगा। औषध बहुत सीधी-सादी है, इतनी सीधी-सादी और सहज होने ही के कारण लोग इसकी उपेक्षा करते हैं।

अनुभव ने यह बताया है, और ये सब महापुरुष जान-बूझकर या अनजाने उसी स्थान पर आकर टकराते हैं, जो राम तुम्हारे सामने रखता है। जब तुम इसका प्रयोग करोगे, तब इसके प्रभाव तुम्हें चकित कर देंगे।

कमरे में बैठे हुए यदि तुम उदास हो, यदि तुम्हें थकावट मालूस हो रही हो, अथवा कोई तुच्छ स्वार्थ-पूर्ण दुष्ट विचार, या कोई मन्द कल्पना या ईर्षा का भाव अथवा किसी नीच स्वभाव से अनुचित आसक्ति पैदा हो जाय, तो मन में विचार करो कि शरीर की स्वस्थ अवस्था में ये विचार पास नहीं फटक सकते। याद रक्खो कि पेट में कुछ गड़बड़ है।

जब कोई मनुष्य राम के पास आता है और अनुचित वार्तालाप करने लगता है या उसका स्वर कड़ा होता है, तो राम उसे कदापि दोष नहीं देता, न वैसे ही स्वर में उसे वह उत्तर देता है। जब कोई मनुष्य तुम्हारे विरुद्ध ईर्षा, कटाक्ष या अप्रसन्नता के लक्षण प्रकट करे, तब तुम उस पर रहम खाओ और उसके पेट के आराम के लिए कोई दवा उसे दो। जब तुम स्वयं दुःख भोगते हो, तब तुम्हें क्या करना चाहिए? क्या तुम्हें बाहरी दवा लेनी चाहिए? अरे! नहीं। ये बाहरी औषधियाँ ठीक औषधियाँ न होंगी, इनका प्रभाव टिकाऊ न होगा।

गिरी हुई हालत में जब आप अपने को समझो, तब, राम की सलाह है, अपना आलस्य त्याग दो, अपनी पुस्तक अलग हटा दो,

खड़े हो जाओ, खुली हवा में टहलने लगो और तेज़ी से चलो। स्वभावत: तुम्हारी श्वास दीर्घ हो जाती है। स्वभावत: ऐसी साँस चलेगी और वह तुम्हें शक्ति से प्रफुल्लित कर देगी, और सारी गिरावट दूर हो जायगी। वह ठंडी हवा तुम्हारे मुख पर लगकर एक अद्भुत प्रभाव पैदा करेगी। बह बड़ी ही विचित्र बात है कि अधिक लोगों ने इस पर ध्यान नहीं दिया।

लोगों ने प्रणायाम अथवा श्वास-नियंत्रण पर अनेक व्याख्यान दिये हैं, किन्तु राम का तरीक़ा अत्यन्त स्वभाविक है। समुद्र-तट पर अथवा कहीं अन्यत्र चलते समय राम की विधि से तुम्हारा प्राण ठीक क्रम पर आ जायगा। खुली हवा में कमरे के बाहर टहलते रहना दूसरा उपाय है। मान लो कि तुम जल्दी-जल्दी नहीं, किंतु धीरे-धीरे चलते हो, मान लो कि तुम जल्दी-जल्दी चलना अच्छा नहीं समझते और आज़ादी के मुक़ाबले नज़ाकत से चलने के ज्यादा ग़ुलाम हो, क्योंकि अपने हित की अपेक्षा तुम्हें लोक मत का अधिक ध्यान है, मान लो कि तुम मंद-मंद चलते हो, तब तुम्हारी श्वास वक्षस्थल के केवल ऊपरी भाग को भरती है और यथेष्ट गहराई तक नहीं जाती, तब राम तुम्हें सलाह देता है कि किसी कोने या ऐसे स्थान में चुपचाप खड़े हो जाओ, जहाँ किसी का ध्यान तुम पर न जाय, और मुख खोलकर भरपूर हवा खाओ। मुख से हवा खूब भीतर खींचो और नथुनों से उसे बाहर निकालो। इस विधि का पूरे ज़ोर से अभ्यास किया जाना चाहिए, और तुम देखोगे कि इससे कितनी अपूर्व प्रफुल्लता तुमको मिलती है।

राम ने आपको अत्यन्त स्वाभाविक प्राणायाम बताया है। श्वास लो, श्वास लो, श्वास लो। दीर्घ श्वास में वायु वक्षस्थल के नीचे का भाग भरेगी और सम्पूर्ण भीतरी नली से होकर भी गुज़रेगी। इस तरह तुम्हारी गिरी हुई तबीयत तुरन्त सँभल जायगी और तुम्हारी शक्तियाँ तीव्र हो जायँगी। श्वास लेते समय यह बोध करके कि "मैं सारे संसार की वायु

श्वास में ले रहा हूँ, समग्र संसार का अखिल सौन्दर्य और प्रेम मेरा है।" गहरी श्वास लेते हुए इसी विचार को इस तरह जारी रक्खो कि दुनिया की सारी सुन्दरता, सारी दौलत मेरी है"—इससे तुम प्रसन्न हो जाओगे। ज़रा इसकी परीक्षा कीजिए, इतना सहज होते हुए भी इसके परिणाम अपूर्व हैं।

टहलने के बारे में लोग किसी दूसरे के साथ टहलना पसन्द करते हैं और किसी अनाड़ी कवि ने इसी आशय की कविता भी लिख डाली है—

"Have a friend with whom to talk,
Somebody with whom to walk".

अर्थ—"बात करने को मित्र हो कोई,
साथ चलने को हो साथी कोई।"

राम कहता है कि यदि तुम मननशील नहीं हो, अथवा तुम आध्यात्मिक वृत्ति के नहीं हो, यदि मन को तुम किसी महान् या श्रेष्ठ काम में नहीं लगा सकते, तब तुम्हारे लिए किसी को अपने साथ रखना आवश्यक हो सकता है। अथवा मान लो कि तुम बड़े निर्बल हो, तब राम तुम्हें सलाह देता है कि किसी शिक्षक के साथ टहलने के अधिकार का उपयोग करो, उससे तुम्हारा कुछ हित होगा। किन्तु उन लोगों के साथ घूमने न जाओ, जो तुम्हारा उत्थान या उत्कर्ष नहीं करते। उन लोगों के साथ न टहलो, जो तुम्हें घृणा, मत्सर या ईर्षा के अधम लोकों में लाते हैं, तो तुम अकेले टहलो और यदि तुम विचारवान् हो, तो जब कोई भी आस-पास न हो तब ॐ का जाप शुरू करने से अधिक हितकर तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं हो सकता। जब तुम चलते हुए ॐ का उच्चारण करोगे, तब देखोगे कि स्वयं वायु-मण्डल ही तुम्हें प्रेरित कर रहा है और तुम्हारे भीतर अपूर्व तथा अद्भुत विचार आ रहे हैं।

लोग इस तथ्य से लाभ नहीं उठाते। यह बहुत साधारण सलाह ज्ञान पड़ती है, किन्तु अभ्यास करने पर जो अपूर्व परिणाम निकलेंगे, वे तुम्हें चकित कर देंगे।

एक महान् और शक्तिशाली सागर है। इस महाशक्तिशाली सागर में, एक बूंद जल के पीछे वही शक्ति है, जो समुद्र की लहर के पीछे। एक लहर के पीछे भी वही शक्ति है, जो दूसरी के पीछे है। हर एक बुलबुले की आत्मा शक्तिशाली सागर है। हर एक तरंग का आधार वही अनन्त समुद्र है।

इस प्रकार अनुभव कीजिए, कृपया अनुभव कीजिये कि यह जिसे आप शरीर कहते हैं, यह छोटा नन्हा बूंद, लहर की तरह, उसी शक्तिशाली समुद्रों के समुद्र से, जो सूर्यों और नक्षत्रों का आधार तथा सहारा है, पालित और पोषित होता है, बल और समर्थन पाता है।

तुम्हारी आत्मा सूर्य और नक्षत्रों का सहारा है, तुम्हारे रुधिर के हर एक बूंद की वह आत्मा है; सम्पूर्ण शरीर की वह आत्मा है, शिर के प्रत्येक बाल की आत्मा है, सारे देह की आत्मा है।

तुम यह अनन्त आत्मा हो। तुम केवल इस शरीर का ही समर्थन और रक्षण नहीं करते, किन्तु तुम अखिल देश (Space) और अखिल काल (Time) की भी आत्मा हो। अब ध्यान दो, तुम वह आत्मा हो, जो अखिल काल और अखिल देश को सहारा दे रही है। तुम अनन्त की आत्मा हो। अब देखिये, यदि यह शरीर मृत्यु को प्राप्त हो, तो क्या उस आत्मा की मृत्यु होगी? नहीं। यदि शरीर मरे, तो आत्मा तब तक नहीं मर सकती जब तक काल और देश है। अरे, कैसा परम आश्चर्य है! मैं सम्पूर्ण देश की आत्मा हूँ, सम्पूर्ण नित्यता की आत्मा हूँ, निखिल काल की स्वयं आत्मा हूँ।

जब तुम अकेले घूमते हो, समुद्र के किनारे या खुली हवा में टहलते हो, इसी विचार का अनुभव करो। जब तुम अकेले खड़े हो, तब

भी इसी विचार का अनुभव करो। चाहे तुम स्वच्छन्दता पूर्वक ॐ का उच्चारण न करो, किन्तु इस विचार को भाव द्वारा धारण करना ही ॐ का उच्चारण करना है।

ॐ के बाहरी उच्चारण पर तुम्हें अति अधिक ज़ोर देने की ज़रूरत नहीं है; किन्तु भावना के द्वारा तुम्हें अनुभव करना चाहिए कि "मैं अखिल अनन्त हूँ, सम्पूर्ण देश मैं हूँ, सब शरीर मुझसे भरे हैं, शत्रुओं या मित्रों की सब इच्छाएँ मेरी हैं, समग्र इच्छाएँ मेरी हैं।"

यह एक मनुष्य है, जिससे मुझे डाह है, जिसे मैं अपना प्रतियोगी (रक़ीब) समझता हूँ। अब समझो "वह प्रतियोगी मैं ही हूँ।" सारी विलगता त्याग दो, अनुभव करो कि वह क्षुद्र डाह करनेवाले व्यक्ति तुम नहीं हो। मान लो कि तुम किसी को प्यार करते हो और तुम्हें मालूम होता है कि कोई दूसरा भी उसी को प्यार करता है, तब डाह का भाव आता है। इसे बढ़ने न दो। प्रेमपात्र तुम हो और जो दूसरा तुम्हारी हृदय-प्रतिमा को प्यार करता है, वह भी तुम्हीं हो, उसके हर्ष तुम्हारे हर्ष हैं, इस सत्य को अनुभव करो। सत्य को अनुभव करने के लिए तुम्हें अपने आपको सत्य-रूप अनुभव करना चाहिए। समझो "मैं वह हूँ जिसके पास वह व्यक्ति पहुँचता है, कोई पृथक्ता नहीं है।" इससे ऊपर उठो। बड़े और छोटे के इस विचार से पीछा छुटाओ। न कोई बड़ा है और न कोई छोटा, इसके अनुभव करने में अपने वेदान्त को लगाओ। समझो—"मैं वह हूँ, जो आज बड़ा है; और वह, जो आज बड़ा नहीं है, वह भी मैं हूँ।" एक मनुष्य तुमसे बड़ा हो सकता है, उसमें तुमसे अधिक दौलत कमाने की शक्ति हो सकती है, उसे तुम सें अधिक सम्मान प्राप्त हो सकते हैं। अब उन्नति करने का एक यही उपाय है कि हम देखें कि हम जिससे डाह करते हैं वह शरीर है, किन्तु वह शरीर उस नायक (Hero)

की आत्मा नहीं है; नायक की आत्मा और मैं एक हूँ। यह समझो और डाह के इस भाव से ऊपर उठो।

प्रकृति में जो सर्वोत्तम है, उसके साथ-साथ जितना ही अधिक तुम्हारा हृदय धड़कता है, उतना ही अधिक तुम्हें यह भान होता है कि सम्पूर्ण प्रकृति भर में तुम्हीं साँस ले रहे हो। वृक्षों की उत्पत्ति और नाश में तुम्हीं साँस लेते हो। सूर्य उदय और अस्त होता है, यही साँस का अन्दर लेना और बाहर निकालना है।

जीवन और मृत्यु साँस भीतर लेने और साँस बाहर निकालने के समान हैं। जब तक तुम प्रकृति से फटे हुए हो, तब तक तुम नष्ट वा भ्रष्ट हो। जितना ही अधिक तुम समझते हो कि सारा जगत् मेरी श्वास है और मैं वह अनन्त शक्ति हूँ जो मृत्यु की घटना द्वारा, आवा-गमन के द्वारा, पृथ्वी और ब्रह्माण्ड द्वारा श्वास लेती है, उतना ही अधिक तुम सब तुच्छ चिन्ताओं और फ़िक्रों से ऊपर उठ जाते हो। यह है आन्तरिक सुन्दरता। जो लोग भीतर से सुन्दर हो जाते हैं, उनके चेहरे चाहे जैसे हों, वही प्यारे हो जाते हैं। वे समग्र संसार के आकर्षण का केन्द्र बन जाते हैं।

सुकरात बड़ा बदसूरत था। पर वह भीतरी सुन्दरता के लिए प्रार्थना करता था। अच्छे विचार रखना भीतरी सुन्दरता है।

यह भाव तुम्हारे लिए समग्र संसार को कितना स्निग्ध बना देता है! जब तुम समझते हो कि तुम स्वाधीन हो, तब दुनिया में कोई विषमता, कोई खुरखुरापन नहीं रह जाता।

यदि सूर्य नीचे गिर पड़े, यदि चन्द्रमा धूल में मिला दिया जाय यदि नक्षत्रों के मण्डल नाश हो जायँ, तो तुमको, जो वास्तविक स्वरूप और सच्ची आत्मा हो, उससे क्या ? ऐसा भान करो, क्योंकि फिर तुमको कोई भी हानि नहीं पहुँचा सकता। सूर्य, चन्द्र और तारागण चाहे नाश हो जायँ, पर तुम्हारा नाश नहीं होगा। तुम सम्पूर्ण देश और

सम्पूर्ण काल की आत्मा हो। तुम अविनाशी हो और तुम शिला की तरह स्थिर खड़े हो। इसको अनुभव करो। इसी प्रकार तुम्हें श्वास लेना चाहिए। फेफड़ों और मन के द्वारा श्वास लो। मन के द्वारा तुम सारे संसार की आत्मा को अपनी श्वास बनाओ। तुम अखिल विश्व को अपने प्राणों में ले आओ और इस प्रकार प्रकृति से एकताल हो जाओ। तुम्हारा जीवन सारे विश्व से एकताल हो जायगा।

एकगति होना क्या है? मस्तिष्क की गति एकताल होने दो। एकताल गति सकल मण्डलों का संगीत है। ब्रह्माण्ड के सब मण्डल उस एकताल गति में श्वास ले रहे हैं।

यह ताल-गति प्राप्त करो। इस ताल के साथ एकस्वर हो, और आकाश-मंडल के राग के साथ एक स्वर हो, और तुम भीतर से सुन्दर हो जाओगे।

इस महा समुद्र में एक मछली है। समुद्र का जल मछली के गलफड़ों को भरता है, और समुद्र का पानी उसमें होकर गुज़र जाता है। सारी गति उसमें है।

इसी तरह, भान करो कि सम्पूर्ण संसार मेरा है। वह क्या है, जो तुम्हारी प्रसन्नता और बलवलों पर पानी फेर देता है? वह वही है जिसे आध्यात्मिक मलिनता कहते हैं। तुम्हें अपने को शुद्ध पारदर्शी बनाना है। तुममें जो मलिनता है, उसे त्याग देना है। वह तुम पर अँधियारा छा देती है।

यह मलिनता क्या है? यह वह क्षुद्र अहं या ख़ुदी है, यह वह मिल्कियत जताने वाला अहम् है, जो कहता है—"यह मेरा है, उस पर मेरा अधिकार है, इत्यादि।" यह वह मलिनता है जिसे त्याग देना चाहिए। खुली हवा में साँस लेते समय यह भान करो कि तुम संपूर्ण संसार से एक हो। तुम शुद्ध पारदर्शी हो जाओ, और हर एक वस्तु तुम्हारे पास आंवेगी। दो मनुष्य एक राजा के सामने गये और

कहा कि आप अपने महल की दीवारें रँगने और सजाने के काम पर हमें नियुक्त कीजिये। इन दो प्रतियोगी कारीगरों ने सारे काम का ठेका पाने के लिये राजा से प्रार्थना की। उन्हें नियुक्त करने से पहले राजा ने उनके काम की परीक्षा करना चाही और इसके अनुसार उनसे आमने-सामने की दो दीवारें रँगने को कहा।

कारीगर एक-दूसरे के काम को देखे बिना अपना काम अलग-अलग कर सकें, अतः दीवारों के सामने परदे डाल दिये गय। उन्होंने लगभग एक महीने काम किया और समय पूरा होने पर एक कारीगर राजा के पास पहुँचकर बोला--"मैंने अपना काम पूरा कर दिया है, अतः मैं ने जो कुछ किया है, उसे आप चल कर देख लीजिये।" तब राजा ने दूसरे कारीगर से पूछा--"तुम्हें पूरा करने में कितने दिन लगेंगे ?" उसने उत्तर दिया--"महाराज, मैंने भी समाप्त कर दिया है।" दिन नियत कर दिया गया और राजा अपने सब मुसाहिबों तथा अन्य दर्शकों के साथ देखने पहुँचे कि कौन कारीगर दूसरे से बढ़ गया है। पहले कारीगर की दीवार के सामने से परदा हटाया गया। राजा और उसके परिजन तथा सब दर्शकों ने काम को अत्युत्तम और अपूर्व बताया, वे काम पर मुग्ध हो गये, उसे उन्होंने महान् और उत्कृष्ट समझा।

दरबारियों ने राजा से कानाफूसी की कि इससे बेहतर की आशा नहीं की जा सकती। दूसरे कारीगर का काम देखना अब बेकार है, क्योंकि यह चित्रकार हमारी सब आशाओं से कहीं अधिक बढ़ गया। उन्होंने कहा कि सारा काम इसी कारीगर को देना उचित है। किन्तु राजा अपने दरबारियों से अधिक बुद्धिमान् था और उसने दूसरी दीवार के सामने से परदा हटाये जाने की आज्ञा दी। और देखो ! लोग स्तंभित हो गये, उनके मुंह पसर गये और हाथ उठ गये। आश्चर्य से नीचे की साँस नीचे और ऊपर की साँस ऊपर रुक गई। अरे आश्चर्यों का आश्चर्य, यह तो और भी अपूर्व है !

आप जानते हैं, उन्हें क्या पता लगा ? दूसरे चित्रकार ने महीने भर में दीवार पर कुछ भी नहीं चित्रित किया था। उसने दीवार को यथासाध्य शीशा बना देने का प्रयत्न किया था। उसने इस दीवार को घोंटा, क़लई की और सुन्दर बना दिया। वह दीवार को पूरा शीशा बना देने में सफल हुआ। सामने की दीवार पर उसके प्रतियोगी ने जो कुछ चित्रित किया था, वह पूरी तरह इस दीवार में प्रतिबिम्बत हुआ। इसके सिवा, यह दीवार अधिक चिकनी थी, इसके सामने दूसरी दीवार खुदरी, विषम और कुरूप जान पड़ती थी। उस दीवार की सारी चित्रकारी इस सुन्दर, चिकनी दीवार में प्रतिबिम्बित हुई, और फल यह हुआ कि इस दूसरी दीवार में पहली दीवार की सारी सुन्दरता जुड़ गई।

उन दिनों लोगों और राजाओं को दर्पणों की जानकारी नहीं थी, अतः उन्होंने बहुत सूक्ष्मता से जाँच नहीं की, किन्तु बोल उठे–– "महाराज ! यह मनुष्य दीवार के अन्दर गहरा घुस गया है, इसने दीवार दो या तीन गज़ खोद कर हर एक बात चित्रित की है।"

चित्र दर्पण में उतने ही भीतर जान पड़ते थे, जितनी दूरी पर इस दीवार से दूसरी दीवार थी।

अब जिस तरह इस चित्रकार ने दीवार यहाँ तक बालू से मली और घोंटी थी कि वह दर्पण हो गई थी, उसी तरह राम तुमसे कहता है कि जो लोग पुस्तकें पढ़ने में व्यग्र रहते हैं, उन्हें बाहरी ज्ञान की प्राप्ति होती है; जो बाहर चित्रकारी कर रहे हैं, उन्हें उन दीवारों पर अपनी सारी इल्मी लियाक़त ख़त्म करके ऐसी चित्रकारी करने दो जिससे कि वह सुन्दर प्रतीत हों।

अपने मन और बुद्धि की दीवारों को घोंट और रगड़कर साफ़-शफ़्फ़ाफ़ और चिकना बनाने अर्थात् अपने हृदयों को शुद्ध करके साफ़-शफ़्फ़ाफ़ बनाने की जो प्रक्रिया है, उससे समस्त जगत् का ज्ञान तुम्हारे मन पर प्रतिबिम्बित हो जायगा, और सारा विश्व तुमसे प्रेरित होगा।

राम निजी अनुभव से तुम्हें बताता है कि जब वह हिमालय के घने जंगलों में रहता था, तब प्रायः ऐसा हुआ कि जब मन साफ़ होता था, जब मन शून्य होता था तब अत्युत्कृष्ट विचार, अपूर्व तत्त्वज्ञान और अद्भुत शक्ति मानो प्रेरणा से मन में उदय होती थी। इसलिए राम तुमसे कहता है कि समस्त पुस्तकें, इंजील हो या उपनिषद्, वेद हो या मिल्टन के ग्रन्थ, इमर्सन के ग्रन्थ हों या इंगरसोल की पुस्तकें, प्रेरणा के द्वारा लिखी गई थीं, यद्यपि इंगरसोल धार्मिक नहीं कहा जाता था। स्पेंसर की रचनायें उतनी ही प्रेरित (Inspired) हैं, जितने वेद, क़ुरान या इंजील ! प्रेरणा के बिना कोई ज्ञान नहीं होता, समस्त ज्ञान प्रेरणा के द्वारा आता है। ग्रन्थकार का यह मालिकाना, व्यापारिक, अहंकारी दावा शुरू होना ही, मेहनताना लेने की यह अर्थ-दास्यता की वृत्ति, लोगों से यह माँगना और चाहना ही, मन की दीवारों को अपूर्ण, खुरखुरा और विषम बना देता है। यह तुच्छ रँगने-वाली, दबकने-वाली वृत्ति ही हमें ऐसा बनाती है। जब यह वृत्ति दूर हो जाती है, तब मन की दीवार पूर्ण हो जाती है। जब तुम समग्र संसार के साथ स्पन्दित होते हो, जब संसार का व्यापार तुम्हारा व्यापार हो जाता है, जब संसार का हृदय तुम्हारा हृदय हो जाता है, जब तुम भान करते हो कि तुम समग्र विश्व की नाड़ी में चलते हो, जब जान बूझकर या अनजाने तुम उस दशा में होते हो, तब ज्ञान आता और तुम्हें परिपूर्ण कर देता है। यह है यथार्थ मार्ग।

पुस्तकों और मन्दिरों से अपना अन्वेषण उठाओ; रहस्य को अपने अंदर ढूंढ़ो। सारे संसार को अपने-अपने भीतर खींच लो। तुम स्वच्छ हो। तुम्हारी मलिनता उसी दम भाग जाती है, जब तुम्हारे मन में कोई प्रतियोगिता नहीं रहती, जब तुम्हारा अपने आप पर से दावा उठ जाता है। जब तुम एक शत्रु की इच्छाओं को अपनी ही इच्छाओं-जैसा समझने लगते हो, जब यह कसौटी तुम अपनी आत्मा

में लागू करते हो तब देखते हो कि जिन सब से मैं डाह किया करता था, वे सब मैं ही हूँ, मैं उनकी इच्छाओं का मालिक हूँ। यदि इस शरीर का वध करने की इच्छा हो, और यदि यह इच्छा तुम्हें भी उतनी ही सुखकर हो जितनी उनको, तब तो तुम विश्व से निस्संशय एकस्वर हो, समग्र संसार से एकताल हो। तुम शुद्ध और स्वच्छ हो, सारी मलिनता जाती रही, तुम सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हो। यह सफलता का रहस्य है। दुनिया के सब ख़ज़ाने तुम्हारे हैं।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

१०

मनुष्य का भ्रातृत्व

[१५ फरवरी, १९०३ को दिया हुआ व्याख्यान]

व्याख्यान प्रारम्भ करने के पूर्व आपके लिए यह बेहतर होगा कि मनुष्य-मात्र की एकता, हम सबकी इकाई और मनुष्य-मात्र के भ्रातृ-भाव पर अपने मनों को एकाग्र करें, ज़रा महसूस कीजिये, भान कीजिये, अनुभव कीजिये।

ॐ

यदि यह कोरी कल्पना की ही बात होती, तो इसे सुनने में एक घंटा व्यय करना उचित न होता। इसे एक अमली मामला बना देना चाहिए, जो वस्तुतः तुम्हें आध्यात्मिक आनंद दे सके। अरे! जब हम समझते हैं कि इस दुनिया में सब लोग हमारी आत्मा हैं, तब हमें कितना हर्ष होता है। वह संगीत जो मैंने सुना, मेरा था। अरे! कितना सुख होता है जब हम समझते हैं कि इस दुनिया में जो लोग अति समृद्ध और लोक-प्रसिद्ध हैं, वे सब मैं हूँ। कितना सुख इससे मिलता है। यह अनुभव करने की चेष्टा करो और तुम्हें अपने अभ्यास में इसके स्वाभाविक फल दिखाई पड़ेंगे। जैसे तुम समझते

हो कि यह एक शरीर तुम्हारा है, उसी तरह यह समझना और अनुभव करनां शुरू करो कि सब शरीर तुम्हारे हैं। और जब तुम ऐसा समझना शुरू करते हो, तब तुम देखोगे कि ठीक जैसे यह शरीर, जिसे तुम अपना कहते हो, तुम्हारी इच्छाओं और आज्ञाओं का पालन करता है, जिस तरह तुम्हारे इच्छानुसार, तुम्हारी मर्ज़ी पर पैर चलना शुरू करते हैं, तुम्हारे आदेश पर हाथ चलने लगते हैं; जिस तरह पर तुम अपने शरीर में यह देखते हो, ठीक उसी प्रकार यह अनुभव किया जा सकता है, यह परीक्षा-सिद्ध तथ्य है कि यदि तुम एकता के इस सत्य पर अपने मन और शक्तियों को एकाग्र करो, तो तुम देखोगे कि इस दुनिया में सब शरीर ठीक तुम्हारी इच्छाओं के अनुसार बर्तना और चलना-फिरना शुरू कर देंगे। यह परीक्षा-सिद्ध तथ्य है। इसमें विश्वास कीजिये, इसकी जाँच कीजिये। यह कल्पना का विषय नहीं है, यह कोरी बात-चीत नहीं है, यह उतना अधिक तथ्य है जितना तुम अपने इस शरीर को तथ्य कहते हो। यद्यपि यह सर्वथा तत्त्व है, फिर भी तर्क के लिए इसे व्यावहारिक मान लेने पर, मनुष्य-मात्र की एकता के इस अनुभव से एक सुख तुम्हें अपने भाग में आता तुरंत दिखाई पड़ेगा। लोग धन के लिए उदास और चिन्तित क्यों रहते हैं? वे वाटिकाओं पर अपना अधिकार जमाना और हरे-भरे मैदानों को अपना बनाना चाहते हैं। कैसा मलिन विचार है! क्या तुम यहाँ के धनी लोगों के बाग़ों में, सार्वजनिक बाग़ों में नहीं जा सकते, और वहाँ घंटों बैठ कर अपनी इच्छा के अनुसार उन बाग़ीचों का आनन्द ठीक उसी तरह नहीं लूट सकते, जिस तरह वह भद्र पुरुष उसका आनन्द लूटता है, जो उस बाग़ीचे को अपना ही कहता है? उस बाग़ीचे को जो भद्र पुरुष अपना कहता है, क्या वह कभी उन सब फूलों और फलों को चार आँखों से देख सकता है? क्या वे बाग़, फूल, हरी-भरी पत्तियाँ और वे सारे फल तुम्हारी ही जैसी दो आँखों के द्वारा उसे सुलभ नहीं हैं? बाग़ में बुलबुलों और

पक्षियों का गान वह भी उसी तरह के दो कानों से सुनता है, जैसे तुम सुनते हो। तो फिर उस बाग़ के अधिकारी होने की मूर्खता-पूर्ण इच्छा के लिए क्यों हैरान और परेशान होते हो? हाँ, राम चाहता है कि दुनिया के सब बाग़ों को तुम अपना ही समझो। राम चाहता है कि मनुष्य के सब शरीरों को तुम अपना ही शरीर समझो, और अनुभव करो। अनुभव करो कि सब सुयोग्य शक्तियाँ और प्रवीण मन तुम्हारे ही हैं। यह ऐसी कल्पना नहीं है जिसे तुम अस्वाभाविक या क्लिष्ट कह सको। जीवन के उच्च आदर्शों की प्राप्ति के लिए क्या तुम्हें अनेक गुणों की साधना नहीं करना पड़ती? वे तुम्हारे लिए उपयोगी हैं, किन्तु सत्यों के इस सत्य पर, कि सब एक हैं, सब शरीर तुम्हारे हैं, इस तत्त्व पर अपनी शक्तियों को एकाग्र करना और अपने विचारों को केन्द्रित करना तुम्हारे लिए सबसे बढ़कर उपयोगी होगा। इस सत्य पर, इस परम तत्त्व पर अपने विचारों को केन्द्रित करो, अपनी शक्तियों को एकाग्र करो। महसूस करो, भान करो और अनुभव करो कि सब तुम्हारे शरीर हैं। सड़क पर जाते हुए जब किसी मनुष्य को तुम देखो, जो प्रतिष्ठित हो—चाहे वह इंगलैण्ड का सम्राट् हो, चाहे रूस का ज़ार और चाहे यूनाइटेड स्टेट (अमेरिका) का प्रेसिडेंट हो—तो किसी तरह की ईर्षा या भय का विचार अपने मन में न आने दो। उसकी शाहाना नज़र को अपनी ही दृष्टि समझ कर मज़े लूटो—"मैं वही हूँ, अन्य कोई नहीं।" जब तुम ऐसा अनुभव करने की चेष्टा करोगे, तब तुम्हारा अपना अनुभव यह सत्य सिद्ध कर देगा कि सब एक हैं, प्रत्येक व्यक्ति तुम्हारे कान, नेत्र, पैर और तुम्हारा अपना शरीर हो जायगा। मनुष्य का भ्रातृत्व! तर्कशास्त्र इसे चाहे सिद्ध कर सके या न कर सके, पदार्थ-विद्या इसे साबित कर सके या नहीं, दर्शन-शास्त्र इसे प्रमाणित करने में समर्थ हो या असमर्थ, किन्तु है यह एक तथ्य, जिस तथ्य को अनुभव सिद्ध करता है।

ॐ

अच्छा, राम अब तुम्हें कुछ युक्तियाँ बतावेगा, जिनसे यह सत्य, मनुष्य का भ्रातृत्व, स्थापित होगा, और जब तक वह युक्तियाँ दे, तब तक तुम अपने भावों में और हृदय में उन परिणामों को स्थान देने की कोशिश करो, और अपने भावों और हृदय से उनको ग्रहण करने का यत्न करो। यदि तुम ऐसा करोगे, तो तुम राम के मुख से निकलनेवाले परिणामों को स्वयं अनुभव करोगे।

उस सज्जन को, जिसे समाचार-पत्रों में इस व्याख्यान का विज्ञापन देना पड़ा था, "मनुष्य का भ्रातृत्व" शीर्षक बताने के बाद राम लज्जित हुआ। "मनुष्य का भ्रातृत्व" भ्रान्त उपाधि है। "विश्वव्यापी भ्रातृत्व" भ्रमात्मक उपाधि है, यह यथार्थ ठिकाने पर नहीं पहुँचती। 'भ्रातृ' शब्द कुछ भेद जतलाता है। भाई एक दूसरे से कलह करते, लड़ते दिखाई पड़ते हैं; किन्तु यहाँ तो किसी तरह के भेद के लिए ज़रा भी स्थान नहीं है, यहाँ भ्रातृत्व से अधिक है। "मनुष्य की एकता और संयुक्त एकता" अच्छा शीर्षक होता। आप कहेंगे कि आत्मा-सम्बन्धी अनुमानों से हमें हैरान न करो। तुम सदा हमसे आत्मा या स्वयं की चर्चा करते हो। यह तो बड़ा ही सूक्ष्म विषय है।" अच्छा, बहुत ठीक, यदि तुम आत्मा के बारे में सुनने को राज़ी हो, तब तो बातचीत के लिए गुंजाइश नहीं है, और सब मामला तुरन्त समाप्त हो जाता है। कम-से-कम इस विषय में हम सब एक हैं, कोई शब्द उस अवस्था को नहीं पहुँच सकते, कोई भाषा वहाँ नहीं जा सकती। किन्तु यदि तुम आत्मा के बारे में नहीं सुनना चाहते हो, जो शब्दों से परे है, तो राम स्थूलतम स्थिति-बिन्दु से ही मामले को उठावेगा। हम स्थूल देह से शुरू करेंगे, वह अति स्थूल है। यदि हम आत्मा की प्रकृति को त्याग भी दें, यदि हम आत्मा को सच्चा अपना आप न भी समझें, तो स्थूल शरीर भी सिद्ध करता है कि हम सब एक हैं। सब मन प्रमाणित करते हैं कि

तुम सब एक हो। भावना के लोक में भी पदार्थ-विद्या सिद्ध करती है कि तुम सब एक हो; स्थूल लोक पर, मानसिक लोक पर, सूक्ष्म लोक पर तुम सब एक हो। यदि तुम ऐसा नहीं समझते, यदि तुम अपने अमली नित्य के जीवन में उस भ्रातृत्व का व्यवहार नहीं करते, तो तुम अत्यन्त पवित्र सत्य को भंग कर रहे हो। यह तो तुम जानते हो कि जो मनुष्य सरकारी कानूनों के विरुद्ध चलने की चेष्टा करता है, वह दण्ड पाता है, वह कोरा नहीं बच सकता। इसी प्रकार जो लोग इस भ्रातृत्व को नहीं मान करते और नित्य के जीवन में इस भ्रातृत्व को अमल में नहीं लाते, उन्हें दण्ड भोगना पड़ेगा। इस अत्यन्त पवित्र धर्म, इस अत्यन्त पवित्र सत्य, इस क़ानून अर्थात् मानव-जाति के भ्रातृत्व, तुम्हारे हर एक और सबकी एकाई को केवल तोड़ने के प्रयत्नों का परिणाम ही दुनिया की सारी व्यथायें और विश्व की सारी दुर्दशा और विकलता का कारण है। अब देखो कि कैसे हमारे सब भौतिक शरीर एक हैं। पूछोगे, यह कैसे हो सकता है? वह शरीर वहाँ बैठा है और यह शरीर यहाँ खड़ा है, तब वे एक कैसे हो सकते हैं? ठीक वैसे ही जैसे समुद्र में हमें एक लहर यहाँ और एक वहाँ जान पड़ती है, जान पड़ता है कि वे विभिन्न स्थानों पर बिठाई गई हैं और वे विभिन्न आकार की भी जान पड़ती हैं; किन्तु वास्तव में वे दोनों लहरें या तरंगें एक हैं, क्योंकि वे उसी एक पानी से बनी हैं, एक ही समुद्र है, जो इन लहरों में दिखाई पड़ता है। जिस पानी ने अब इस लहर को बनाया है, वही थोड़ी देर बाद दूसरी लहर या तरंग बनावेगा। लहरों के मामले में हम जो कुछ देखते हैं, वही बात तुम्हारे भौतिक शरीरों की भी है। जो वस्तु अब इस शरीर को बनाती है, वही कुछ देर बाद दूसरे शरीर को बनाती है। इतना ही नहीं, बल्कि इससे भी अधिक, जो भौतिक परमाणु इस शरीर के, जिसे तुम राम का शरीर कहते हो, सम्पादक जान पड़ते हैं, तुम्हारे जीवन-काल में ही दूसरी देह में चले जाते हैं।

श्वासोच्छ्वास इसे सिद्ध करता है। तुम ऑक्सीजन भीतर खींच रहे हो और उसे कार्बोनिक एसिड वायु के रूप में परिणत करके बाहर निकाल रहे हो। इस कार्बोनिक एसिड गैस को पौधे साँस द्वारा भीतर ले रहे हैं और ये पौधे ऑक्सीजन छोड़ रहे हैं। उस ऑक्सीजन को तुम साँस से भीतर लेते हो, और तुम कार्बन डायोक्साइड साँस से बाहर निकालते हो। उसी कार्बन डायोक्साइड को फिर पौधे अपने भीतर खींचते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि पौधों से तुम्हारा भाइयों-जैसा सम्बन्ध है। तुम्हारी साँस उनमें जाती है। और उनकी साँस तुममें पैठती है। तुम पौधों में साँस छोड़ते हो और पौधे तुम में साँस प्रविष्ट करते हैं। इस प्रकार तुम बाग़ों के पौधों से भी एक हो।

अब हम दूसरे पहलू से इसे विचारेंगे। जो ऑक्सीजन तुम साँस द्वारा भीतर खींचते हो और जो कार्बन डायोक्साइड में बदल जाता है, वह पौधों द्वारा छोड़ा हुआ था। वही ऑक्सीजन तुम्हारे भाइयों के फेफड़ों में जाता है। वही ऑक्सीजन जो इस समय तुम्हारे शरीर में है वही फिर तुम्हारे भाई के शरीर में भी जाता है। तुम सब-के-सब एक ही वायु साँस में लेते हो। ज़रा महसूस तो करो कि तुम सब-के-सब एक ही हवा में साँस लेते हो, तुम्हारी साँसों के द्वारा तुम्हारे सब शरीर एक हैं; उसी प्रकार जैसे तुम एक ही पृथ्वी पर, एक ही सूर्य और चन्द्रमा के नीचे रहते हो और एक ही वायुमंडल तुम्हारे चारों ओर है। तुम फल, फूल, शाकभाजी, अन्न या मांस खाते हो। उनके खाने से तुम्हारे शरीर की रचना होती है। मल-मूत्र के रूप में वही बाहर निकल जाते हैं और अपने इस त्यागे हुए रूप में वे वनस्पतियों और फलों में प्रवेश करेंगे। वे उन रूपों में पुनः प्रकट होते हैं। वही पदार्थ, जो तुम्हारे शरीरों से बाहर निकला था। जब शाक-भाजियों और फलों के रूप में पुनः प्रकट होता है, तब फिर तुम्हारे भाइयों द्वारा ग्रहण किया जाता है, दूसरे लोगों के शरीरों में प्रवेश करता है। इस प्रकार हम देखते

हैं कि जो पदार्थ एक बार तुम्हारा था, वही तुरन्त दूसरे का हो जाता है।

यदि हम सूक्ष्म-दर्शन यंत्र से अपनी खाल की ओर देखें, तो हम अपने शरीरों से छोटे जानदार परमाणु बाहर निकलते, बहुत ही छोटे जीवित ज़र्रे अपनी देहों से बाहर आते देखेंगे। वे केवल बाहर ही नहीं निकल रहे हैं, किन्तु वैसे ही परमाणु हमारे शरीर में जा भी रहे हैं। कुछ परमाणु शरीरों से बाहर आ रहे हैं और कुछ शरीरों में प्रवेश कर रहे हैं। इस दुनिया में इसी प्रकार निरन्तर अदल-बदल हो रहा है। जानदार ज़र्रे, जो अब तुम्हारी देह से बाहर आ रहे हैं, वे इस वायुमण्डल में फैल रहे हैं और वही सजीव परमाणु, जो अब तक तुम्हारे थे, बिना विलम्ब, तुरन्त तुम्हारे अन्य संगी-साथियों के हो जाते हैं। पदार्थ-विद्या असंदिग्ध रूप से यह प्रतिपादित करती है कि तुम्हारे भौतिक शरीर सब एक हैं। तुम शायद इस पर विश्वास न करोगे। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि सजीव, अति सूक्ष्म परमाणु मेरे मित्रों के शरीरों से निकलकर मेरी देह में प्रवेश करते हैं, और ऐसे ही परमाणु, जो मेरे शरीर से बाहर निकलते हैं, वे मेरे मित्रों के शरीर में चिपटते हैं? यह कैसे सम्भव है? आओ, जाँचें। गंध का कारण क्या है? आप जानते हैं कि जो कुछ वस्तुएँ हम सूंघते हैं, उनसे बाहर निकलने वाले छोटे, सजीव परमाणु ही गन्ध का कारण हैं। फूल छोटे जानदार ज़र्रे बाहर निकालते हैं, इसीलिए वे सुगंधित हैं। यह एक तथ्य है जिसे पदार्थ-विद्या ने सिद्ध कर दिया है। यहाँ तुम्हारे बहुत से शरीर हम देखते हैं, क्या उनसे गंध नहीं आती? तुम्हारी घ्राणेन्द्रिय इतनी तीव्र नहीं है, या यों कहिए कि इस प्रकार की अथवा इस सामर्थ्य की नहीं है कि इस गन्ध को ग्रहण कर सके। तुम्हारे शरीर गन्धवान् हैं। कभी-कभी तुम्हें अपने शरीरों की गन्ध जान भी पड़ती है। कुत्ते सूंघकर तुम्हें ढूंढ़ लेते हैं। यदि तुम्हारी देहों से गन्ध न निकलती होती, तो कुत्ते तुम्हें सूंघकर कैसे ढूंढ़ लेते? तुम्हारे शरीरों

से निकलनेवाली यह गन्ध सिद्ध करती है कि छोटे, सजीव परमाणु तुम्हारे शरीर को छोड़कर बाहर निकल रहे हैं। ये छोटे सजीव परमाणु तुम्हारी देहों से बाहर जाते हैं और दूसरों की देहों से निकलकर तुम्हारी देहों में घुसते हैं। इस प्रकार तुम सब एक हो। अरे, हम सब तो एक ही (विराट्) देह रखते हैं। उस गन्ध को भान करो। इस अर्थ में हम सब एक ही भौतिक शरीर रखते हैं। एक मनुष्य बीमार है, तुम उसके पास जाते हो और उस कमरे तक से उसकी बीमारी की गन्ध आती है। एक मनुष्य किसी संक्रामक रोग से बीमार है—हैज़ा, चेचक या प्लेग से। दूसरे लोगों को बीमारी की छूत कैसे ग्रस लेती है? एकमात्र कारण यही है कि जो छोटे ज़र्रे बीमार की देह से निकल रहे हैं, वे तुम्हारे शरीर में पैठ जाते हैं। इससे क्या यह नहीं प्रकट होता कि रोगी की देह से जो ज़र्रे बाहर आते हैं, वे हमारी देहों में चिपट जाते हैं? इसी तरह महामारी हमें पकड़ती है और हम अपने को बीमार भान करते हैं। एक मनुष्य को ज़ुकाम हो जाता है, उसके साथ रहनेवाले दूसरे व्यक्ति को, यदि वह बहुत कोमल स्वभाव का मनुष्य है, ज़ुकाम हो जायगा। एक मनुष्य यक्ष्मा से पीड़ित है। दूसरे को यह रोग लग जाता है। यह कैसे हो सकता, यदि सजीव परमाणु, जो तुम्हारे भाई का शरीर बनाते हैं, उसके शरीर से बाहर न निकलते और तुम्हारे शरीर न बनाते? इससे स्पष्ट होता है कि तुम सब एक हो। हमारे स्थूल शरीर भी एक हैं, आत्मा का तो कहना ही क्या है! अच्छा, राम इससे एक विलक्षण परिणाम पर पहुँचता है। यदि एक मनुष्य बीमार पड़ता है, तो उसकी बीमारी की मुख्य सूचना क्या है, उस सम्बन्ध में ख़ास ज़िम्मेदारी क्या है? वह रोगी है; वह स्वयं रोग भुगत रहा है, यह सत्य है। क्यों? अपनी अज्ञानता के कारण ही वह हमारी बीमारी भी लाता है। वह यद्यपि स्वयं पीड़ा पा रहा है, किन्तु अपनी इस बीमारी के लिए वह सारी दुनिया के प्रति

उत्तरदायी है। वह रोगी है और अपने रुग्ण शरीर के द्वारा रोग के कीटाणु बिना जाने फैला रहा है। मुझे बीमार न पड़ना चाहिए, केवल इसलिए नहीं कि मुझे पीड़ा होगी, किन्तु इसलिए कि इस शरीर की बीमारी सारे संसार की बीमारी की ज़िम्मेदार हो सकती है। तुम्हें बीमार होने का कोई हक़ नहीं है। अपने बीमारी के कारण तुम सारी दुनिया के प्रति जवाबदेह हो, तुम्हारा रोगी शरीर सम्पूर्ण संसार को बीमार बना रहा है, यह रोग पैदा करनेवाले रोगाणुओं की सृष्टि कर रहा है। इस प्रकार हर एक को खूब सावधान रहना चाहिए। बीमारी सिर्फ जिस्मानी नहीं है, किन्तु मनोवैज्ञानिक बीमारी भी है। तब तो तुम्हें इस बात की पूरी चौकसी रखना चाहिए कि तुम्हारे शरीर बलिष्ठ और चंगे रहें। तुम जब कुछ खा-पी रहे हो, तब सावधान रहो, अपने व्यक्तिगत शारीरिक आराम के लिए नहीं, किन्तु सारे जगत् के हित के लिए अति अधिक न खाओ, अति अधिक न पियो और खूब सचेत रहो।

अच्छा, फिर जो लोग स्वस्थ हैं, उनका रोगियों के प्रति क्या कर्त्तव्य है? जो स्वस्थ हैं, उन्हें रोगियों की सेवा करना चाहिए। यह सेवा व्यक्तिगत रूप से उन पर कृपा या अनुग्रह के लिए नहीं होना चाहिए, वरन् समग्र संसार के लिए, सारे संसार की भलाई के लिए मानव-समाज और सत्य के नाम पर, सार्वभौम भ्रातृत्व के नाम पर, अपने निजी हित के नाम पर तुम्हें रोगी की सेवा करनी है। यह रोगी पर दया नहीं है, रोगी की सेवा करना और उसकी सहायता के लिए प्रयत्न करना तुम्हारा मानव-समाज के प्रति कर्त्तव्य है। तब तुम देखोगे कि हमारे स्थूल शरीर, जो इतने विभिन्न जान पड़ते हैं, एक-दूसरे के लिए पीड़ा पा रहे हैं। माँस और रक्त के सामान्य अति पवित्र बन्धनों से जुड़े हुए, हम स्थूल-लोक में भाई-भाई हैं। चिकित्सक सिद्ध करते हैं कि प्रति सात वर्ष के बाद मनुष्य का शरीर बिलकुल बदल जाता है, देह के प्रत्येक परमाणु के स्थान पर नये परमाणु आ जाते हैं। इससे

यह भी मालूम होता है कि इन परमाणुओं को, जो प्रतिक्षण बदल रहे हैं, इन शरीरों को, जो निरन्तर प्रवाह में हैं, केवल अपना या तुम्हारा समझने का हमें कोई अधिकार नहीं है। यह शरीर मेरा और वह शरीर तेरा कहने का मुझे कोई हक़ नहीं है। यह देह क्षण-क्षण बदला करती है, और वह देह जिसे मैं इस क्षण अपनी कहता हूँ, मेरी नहीं रहती। वह कौन-सी वस्तु है, जिसे मैं अपनी कह सकता हूँ? जो अब राम की देह है, वह सात वर्ष पूर्व किसी दूसरे की देह थी। चौदह वर्ष पहले जो राम की देह थी, वह अब किसी और की है? अनेक लोगों की। सो यह देह, जिसे तुम अपनी कह रहे हो, हर एक की और सबकी है। कृपया यह बात समझो। स्थूल-लोक में भी तुम सब एक हो।

अब हम मानसिक लोक में आते हैं। तुम्हारे बाल बढ़ते हैं और तुम्हारी नाड़ियों में रक्त बहता है। ज़रा ध्यान दो। तुम्हारे बालों को बढ़ानेवाला कौन है? क्या वह शक्ति वही नहीं है जो तुम्हारे साथी मनुष्य के बाल बढ़ाती है? क्या तुम्हें इसमें कुछ भेद मालूम होता है? नाड़ियों में रक्त बहाने-वाला कौन है? क्या यह वही शक्ति नहीं है जो हर एक की और सबकी नाड़ियों में रुधिर बहाती है? तुम्हारे पेट में अन्न कौन पचाता है? क्या यह वही शक्ति नहीं है जो हर एक के और सब के पेट में अन्न पचाती है? क्या यह वही एक शक्ति नहीं है? इस सत्य को अपने मन के सामने रक्खो और एक पल के लिए इसे अनुभव करो। अरे! आश्चर्यों का आश्चर्य, मैं क्या हूँ? क्या मैं वही शक्ति नहीं हूँ जो बाल बढ़ाती, भोजन पचाती तथा नाड़ियों में रक्त प्रवाहित करती है? यदि मैं वही शक्ति हूँ, तो मैं अखण्ड हूँ, एक हूँ, और हर एक की और सबकी देहों में व्यापक हूँ। मैं वह अद्वितीय, अखंड, अप्रमेय, अविनाशी शक्ति हूँ, जो इन सब शरीरों पर शासन करती और उन्हें वश में रखती है। कृपया इसे भान करो। यह मानसिक

लोक की बात है। हम तुम सब एक हैं। तुम सब एक हो, कोई भेद नहीं। कृपया यह भान करो। यह एक देह, जिसे तुम अपनी कहते हो, जब भूखों मरती है, तब तुम शोक क्यों करते हो? वे सब शरीर, जो ख़ूब खाने को पाते हैं, तुम्हारे ही हैं। यह शरीर विशेष, जिसे तुम अपना कहते हो, जब बीमार पड़ता है, तब तुम्हें दुखी और उदास होने की क्या ज़रूरत है? वे सब शरीर जो स्वस्थ हैं, तुम्हीं हो। इस सत्य को भान करो, इस सत्य को महसूस करो। दूसरों के प्रति तुम्हारा क्या कर्त्तव्य है? जब दूसरे लोग बीमार पड़ें, तब उन्हें अपने पास ले आओ। जैसे तुम इस देह विशेष के घावों की सेवा करते हो, ठीक उसी तरह दूसरों के घावों की भी सेवा करो, मानो वे तुम्हारे ही हैं। तुम्हारा कर्त्तव्य औरों को उठाना, उनके साथ सहानुभूति और हमदर्दी करना होगा। किन्तु अपने निजी शरीर के प्रति तुम्हारा कर्त्तव्य यह होगा कि तुम अपने को सब अवस्थाओं में प्रसन्न और सुखी रक्खो। सारी विकलता और क्लेशों से बचे रहो।

अब हम मनोवृत्ति या भावना के लोक (Psychological plane) में आते हैं। भावना के लोक में भी तुम सब एक हो। मनोवृत्ति के लोक में तुम सब एक हो। यह एक सत्य है, तथ्य है इसे खूब अनुभव करो। एक सारंगी है, या यों कह लो कि एक तार वाला बाजा है, जो खूब ठीक और दुरुस्त है। उसी के मुक़ाबले में एक और तार का बाजा रक्खा है। दोनों बिलकुल एक-समान कसे हुए हैं। जब तुम एक के तार को बजाना शुरू करते हो, तब सामने वाले तार से भी वैसी ही ध्वनि निकलती है। जब एक बाजे के एक तार को तुम बजाते हो, तब सामनेवाले तार से भी वैसी ही तंत्री फड़कने लगती है। ऐसा क्यों होता है? कारण यह है कि जिन लहरों से हमें एक बाजे से ध्वनि मिलती है, वे दूसरे बाजे के इर्द गिर्द भी मौजूद है। तुम किसी बात को भान करना शुरू करते हो, तुम्हारे पड़ोसी पर तुरन्त प्रभाव

पड़ता है । नाटक-अभिनयों और नाट्यशालाओं में अभिनय-कर्ता सब प्रकार की मनोभावनाओं का स्वाँग करते हैं। उनकी भावनाएँ सच्ची नहीं होतीं। वे एक ओर तो रोते हैं और दूसरी ओर हँसने लगते हैं। उनकी भावनाएँ सत्य नहीं होतीं। किन्तु फिर भी यह देखा जाता है कि जब कोई बहुत बढ़िया अभिनेता रोना शुरू करता है, तब सब दर्शक, सारे तमाशाई रो पड़ते हैं। यह क्यों? एक वीणा या तार का बाजा बजता है और तुम्हारे मनों तथा भावनाओं के सब बाजों पर तुरन्त चोट लगती है। यदि तुम सब के चित्त एक ही न होते, यदि तुम्हारी सब भावनाएँ या चित्त-वृत्तियाँ या मनुष्य के अन्त:करण वा मनोवैज्ञानिक अस्तित्व भाई-भाई की भाँति एक दूसरे से सम्बद्ध न होते, तो ऐसा होना असम्भव था। यदि तुम्हारे चित्त परस्पर एक-दूसरे से ऐसे सम्बद्ध न होते, जैसे विभिन्न लहरें और तरंगें, यदि तुम्हारे चित्त उसी एक सागर की लहरें और तरंगें न होते, तो यह पारस्परिक सहानुभूति असम्भव होती।

पदार्थ-विद्या कहती है कि यदि एक शरीर की क्रिया का प्रभाव दूसरे शरीर पर पड़ता है, तो दोनों में अनुवर्तन का होना आवश्यक है। कोई शक्ति इस अनुवर्तन के नियम । Law of continuity) को तोड़ नहीं सकती। यह एक ठोस सख्त डेस्क या मेज़ है। इसके एक कोने को सरकाओ, पूरी सरक जाती है। कारण यही है कि यह भाग दूसरे भागों से दृढ़ता-पूर्वक जुड़ा हुआ है। हर एक शक्ति को क्रिया करने के लिए लगातार कर्म करना पड़ता है। इस-प्रकार एक मनुष्य की मनोवृत्तियाँ वा भावनाएँ दूसरे मनुष्य के पास पहुँचा दी जाती हैं। यदि एक मनुष्य का हृदय दूसरे मनुष्य के हृदय से मानो एक अविच्छिन्न माध्यम के द्वारा, जुड़ा न होता, तो ऐसा होना असम्भव होता। इस प्रकार यदि तुम्हारे सबके हृदय एक-दूसरे से, निरन्तरता से, दृढ़ता से, जुड़े हुए न होते, तो एक मनुष्य की मनो वृत्तियाँ और भावनाएँ दूसरे तक कदापि नहीं पहुँच सकती थीं। यह

एक ठोस तथ्य है। क्या तुम नहीं देखते हो कि मनुष्य की मनोभावनाओं का एक दूसरे के पास पहुँच जाने का तथ्य ही तुम्हें इस परिणाम को भान करने के लिए विवश करता है कि तुम सब के मन एक दूसरे से युक्त हैं, मानों वे एक शरीर हैं, उनमें विचार और भावना की एकता है? राम ने प्राय: यह देखा है कि जब वह व्याख्यान में हँसता है, तब हर एक व्यक्ति हँसता है। यह भी देखा जाता है कि जब एक मनुष्य रोने लगता है, तब दूसरे लोगों के चित्त भी द्रवित, आकुल होने लगते हैं। यहाँ एक मनुष्य गा रहा है, जो लोग उसके इर्द-गिर्द हैं, उनके दिल भी लहराने लगते हैं। राम ने यह भी देखा है कि जब एक आदमी गाना प्रारम्भ करता है, तब दूसरे लोग भी गुनगुनाने लगते हैं। यह तथ्य है। यदि तुम्हारी सब की मनोवृत्तियाँ या चित्त एक न होते, तो यह कैसे हो सकता था? कृपया इस पर ज़रा ध्यान दीजिये। हम बातें कैसे सीखते हैं? हम अपने मित्रों और दूसरे लोगों से सीखते हैं। कोई शिक्षक तुम्हें कोई बात कैसे सिखा सकता, यदि शिक्षक और शिष्य का चित्त एक ही न होता, यदि मानसिक जगत् में उनमें परस्पर बन्धुत्व न होता? यहाँ एक चित्त सीधा दूसरे चित्त से वार्तालाप कर रहा है, शिक्षक का ज्ञान शिष्य का हो जाता है, यह कैसे हो सकता था, यदि दोनों चित्तों का सीधा संयोग न होता? और फिर आप जानते हैं कि यह एक अनुभव की बात है कि जब आप वास्तव में अपने मित्र के साथ सहानुभूति करते हैं और जब आप प्रेम, दया, उदारता के भावों को और किसी मनुष्य के प्रति आदर-भाव को हृदय में पोषण करते हैं, तब दूसरा मनुष्य हज़ारों मील की दूरी पर होता हुआ भी, उस सबको अनुभव करने को बाध्य होता है। राम ने इस तथ्य की सत्यता की परीक्षा की है, और प्रत्येक दिन राम इसकी परीक्षा करता है। हज़ारों मीलों की दूरी से कोई भेद इसमें नहीं पड़ता। क्या इससे यह नहीं प्रकट होता कि तुम्हारे सब मन एक ही

सतह पर हैं और उनमें घनिष्ठ सम्बन्ध है ? मानसिक लोक में तुम सब भाई-भाई हो।

इस दुनिया में अपराधियों और कुकर्मियों की उत्पत्ति कैसे होती है ? एक मनुष्य आता है और तुम्हारी भावनाओं को चोट पहुँचाता है; किन्तु वह मनुष्य बड़ा बली है, तुमसे कहीं अधिक शक्तिशाली है। तुम उसके प्रति घृणा का ख्याल रखते हो, किन्तु घृणा के उस भाव को तुम कार्यान्वित नहीं कर सकते। वही प्रबल मनुष्य दूसरे मृदुल मनुष्य की भावनाओं को आघात पहुँचाता है। वह दूसरा मृदुल मनुष्य भी इससे रुष्ट होता है, बुरे विचार रखता है, किन्तु अपने शरीर के द्वारा उन्हें अमल में नहीं ला सकता। बलवान् मनुष्य एक तीसरे व्यक्ति की भावनाओं को घायल करता है। तीसरा व्यक्ति भी दीन है और अपराधी को कोई प्रत्यक्ष हानि नहीं पहुँचा सकता। इसी तरह, मान लीजिये, बीस, पचास या सौ मनुष्य उस मनुष्य से पीड़ित होते हैं। अन्त में एक समय आता है, जब यह बलवान् मनुष्य एक अत्यन्त ही बलवान् मनुष्य के पास पहुँचता है, जो उसके जोड़ का है। प्रथम अपराधी से बहुत ही थोड़ा अपमानित होने पर यह व्यक्ति इतना क्रुद्ध और जामे के बाहर हो जाता है कि वह अपमान की मात्रा का कुछ भी विचार नहीं करता, वह नहीं सोचता कि अपमान बहुत हलका या नगण्य-सा है, उचककर खड़ा हो जाता है और हाथ में बन्दूक लेकर उसे मार देता है। मूल अपराधी को बन्दूक मार दी जाती है, दूसरा मनुष्य घातक कहकर पुलिस द्वारा पकड़ा और मैजिस्ट्रेट के सामने हाज़िर किया जाता है। मैजिस्ट्रेट मामले की जाँच शुरू करता है। अपमान की तुलना में क्रोध को बिलकुल बेहिसाब देखकर वह चकित होता है। अनादर बहुत ही कम था, किन्तु दूसरे अपराधी में भड़क उठने वाला रोष विकट था। मैजिस्ट्रेट को अचम्भा होता है। समाचार-पत्रों में मामले की चर्चा होती है। यह कैसा तुनुक-मिज़ाज आदमी

था, यह बड़ा ही ख़राब आदमी था, अति सामान्य अपमान ने उसके गुस्से की आग इतनी भड़का दी कि उसने मनुष्य की हत्या कर डाली। ऐसे मामले क्या नित्य नहीं घटते? मैजिस्ट्रेट और समाचार-पत्रों की समझ में नहीं आता कि इतने छोटे अपमान से ऐसा भयंकर रोष क्यों भभक उठा? वेदान्त इसे समझाता है। वेदान्त कहता है कि मानसिक सतह पर एक साझे की कंपनी है (Joint Stock Company) है। आप जानते हैं कि ज्वाइंट स्टॉक कंपनियों में बहुत से हिस्सेदार होते हैं और एक मनुष्य उसका व्यवस्थापक होता है। इस तरह जब मूल अपराधी ने तुम्हारी भावनाओं को उत्तेजित किया था, तब तुमने उसके विरुद्ध बैर और विद्वेष के विचारों को बहाया था, और उस प्रवाह में तुमने अपना भाग, अपराधी मनुष्य के विरुद्ध रोष का अपना हिस्सा प्रदान किया था। जब दूसरा मनुष्य अपमानित हुआ था, तब उसने भी अपना हिस्सा दिया, और जब तीसरे व्यक्ति का अनादर हुआ, तब उसने भी अपना हिस्सा दिया। ऐसे ही चौथे, पाँचवें या छठे व्यक्ति भी उसमें अपना-अपना भाग देते रहे। इस तरह पर वह समय भी आ पहुँचा, जब व्यापार शुरू करने के लिए कुछ आवश्यक था, उस सबकी पूर्ति हो गई। तुम जानते हो कि व्यापार आरम्भ नहीं हो सकता, जब तक कुछ हिस्सों का रुपया अदा न कर दिया जाय। जब हिस्सों की यथेष्ट संख्या की रक़म आ गई, तब एक अधिकारी, प्रबल मनुष्य प्रकट हो गया; और जब इस प्रबल मनुष्य का अपमान हुआ, तब आत्मिक बन्धुता के नियम से पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे और अन्य बीसियों क्या, सैकड़ों मनुष्यों के भेजे हुए रोष, ये सब-के-सब रोष इस कर्ता के पास तुरन्त खिंच आये, इसके शरीर में आकर्षित हुए, प्रवाहित हुए और बटुर गए। बस, इसने सांघातिक चोट पहुँचाई और मूल अपराधी को गोली मारा तथा स्वयं राज्य का अपराधी बना। सरकार या राज्य केवल इस अपराधी को दण्ड देगी; किन्तु ईश्वर के नेत्रों में या परमेश्वर अथवा सत्य की दृष्टि

में तुम सब-के-सब हिस्सेदार हो, तुम सब घातक हो । तुम भी हत्यारे हो । शत्रुता या विद्वेष के विचारों को भेजनेवाले तुम सब भी उतने ही दोषी हो, जितना दोषी वह मनुष्य है जिसने हत्या की । इसी प्रकार मसीह कहता है कि केवल हत्या के परहेज़ से काम न चलेगा; किन्तु तुम्हें विद्वेष के विचारों को भेजने से भी बाज़ रहना पड़ेगा । जो अपने साथी से घृणा करता है, वह ठीक उतना ही अधिक हत्यारा है, जितना कि वह मनुष्य जो वस्तुत: ख़ून करता है ? क्यों ? जैसाकि यहाँ स्पष्ट किया गया है कि जो लोग हत्या करते हैं, वे प्राय: क्यों अपमान के हिसाब से बहुत अधिक बिगड़ जाते हैं । अपमान बहुत ही छोटा होता है, किन्तु रोष और उत्तेजना विकट होती है । इसमें तुम देखते हो कि केवल व्यक्तिगत क्रोध ही नहीं भड़क उठता, तुम्हारे भाइयों का कोप भी तुम्हारे पास आता है और तुम्हें दबा लेता है जिससे तुम पागल हो जाते हो । तुम्हें तुम्हारे उन साथियों का कोप क़ाबू में कर लेता है, जिनका अपराधी ने पहले से अपमान किया था । जैसे किसी मनुष्य पर आसेब का साया हो या जैसे किसी पर भूत चढ़ा हो, वैसे ही तुम्हारे साथियों का रोष तुम पर चढ़ जाता है और जब तुम इसके वश में होते हो, तुम अपने जामे से बाहर और उन्मत्त हो जाते हो, और उस दशा में तुम प्राणघातक आघात करते हो । लोग आश्चर्य करने लगते हैं कि अपमान के हिसाब से इतना अधिक कोप क्यों भड़क उठा था । इस तरह तुम्हारे हत्यारे उत्पन्न होते हैं ।

दुनिया का इतिहास पढ़ो और तुम्हें पता लगेगा कि आतंक के राज्य के बाद सब लोगों ने एक ऐसे मनुष्य की इच्छा की, जो बड़ी क्रूरता से काम चला सके, जो उच्छृङ्खल जन-समूह को क़ाबू में रख सके । हर एक ने उच्छृङ्खल जन-समूह कोक़ाबू में करना चाहा, किन्तु उनमें, किसी में यह शक्ति नहीं थी । अब हर एक और सब में यही इच्छा थी कि ऐसा पुरुष मिले, जो विद्रोही लोगों का नियंत्रण करे और इस इच्छा ने नेपोलियन के शरीर में

आकार धारण किया। नेपोलियन ठीक उसी समय आता है, जब समय को उसकी आवश्यकता होती है और उसमें हज़ारों की, वरन् लाखों की शक्ति है। नायकों व शूरवीरों में लाखों की शक्ति क्यों होती है? एक पूरी सेना नेपोलियन को पकड़ने आई और वह अकेला सीधा उनके सामने जाकर कहता है––"ठहरो (Avaunt)" और वे रुक गये। यह एक मनुष्य उन हज़ारों मनुष्यों को, जो उसे गिरफ्तार करने आये थे, डपट के चुप कर देता है। ऐसे तथ्य सुनकर लोग चकित हो जाते हैं। वेदान्त इसे समझाता है। वेदान्त कहता है कि वास्तव में हज़ारों की शक्ति और विचार एक मनुष्य में जमा हो गए हैं, सचमुच हज़ारों के विचार उस मनुष्य में एकत्र हैं। इस प्रकार नेपोलियन को क्या, किसी भी नायक को कोई अधिकार नहीं है कि आत्म-श्लाघा के विचारों को हृदय में स्थान दे। नायकवर, यदि तुम में लाखों की शक्ति है, तो तुम लाखों हो। तुम्हारे शरीर में लाखों के विचार काम कर रहे हैं। तुम्हारा विशिष्ट रूप से पाला-पोसा दैवी शरीर कहाँ है? ये लाखों हैं, जो तुममें काम कर रहे हैं। तुम फिर शैक्सपियर, एक महान् नाट्यकार को देखते हो। इन दिनों किसी शैक्सपियर की ज़रूरत नहीं है। उन दिनों में लोगों को शैक्सपियर की आवश्यकता थी और शैक्सपियर आया। वे नाट्यशाला में जाने के दिन थे, उन दिनों सब लोगों को नाटक-मंच का उन्माद था। उन दिनों को नाट्यकारों की आवश्यकता थी, नाटकों की आकांक्षा थी। लोगों को उनकी चाह थी और लोगों ही के चित्त और विचार शैक्सपियर के रूप में प्रकट हुए। तुम या शैक्सपियर अथवा दूसरा कोई महापुरुष अकेला नहीं प्रकट होता। शैक्सपियर के साथ-साथ हम उज्जवल पुरुषों, मेघावियों, तात्त्विकों––जैसे मारलो, बिउमोंट, फ्लेचर, और कौन-कौन नहीं हैं––की एक पूरी निर्मल धारा पाते हैं, और उसी प्रकार के साहित्य का पूर्ण राज्य हम अपने सामने देखते हैं। इन मामलों की परिस्थितियाँ, लोगों के हृदय, विचारों को

प्रेरित करते हैं, उस ओर विचार भेजते हैं, और ये सब विचार रासायनिक बन्धुता के नियम के अनुसार एक शरीर में एकत्रित हो जाते हैं, और तब तुम्हें शैक्सपियर की प्राप्ति होती है। इस प्रकार तुम देखते हो कि तुम्हारा मधुर वाणीवाला शैक्सपियर और तुम्हारे वक्ता, जो बड़ी-बड़ी जमातों पर अपना आतंक जमा सकते हैं, एक मनुष्य जो हज़ारों को क़ाबू में रख सकता है, एक सेनानायक जिसका वचन हज़ारों-लाखों के लिए क़ानून हो जाता है, एक मनुष्य जो लाखों-करोड़ों मनुष्यों में पौरुष और कर्मण्यता फूंक देता है—ये सब कैसे पैदा हो सकते, यदि लाखों मनुष्यों के विचार विभिन्न शरीरों में न जमा हुए होते? अब तुम देखते हो कि शैक्सपियर और नेपोलियन तुम्हारी अपनी ही सृष्टि हैं। तुम्हारे मनोवेग और तुम्हारे विचार उनके मनोविकार और उनके विचार हो जाते हैं। ये ऐतिहासिक तथ्य हैं, और हम नित्य भी इन्हें अपने चारों ओर देखते हैं। इस तरह मनोवृत्ति के लोक में भी तुम सब एक हो।

जेरुसलेम पर अधिकार जमानें के लिए ईसाइयों के धर्म-युद्धों (Crusades) का क्या कारण हुआ? एक मनुष्य को जेरुसलेम की दशा पर बहुत वेदना हुई। वह यूरोप लौटा और उसने यूरोप-वासियों में जेरुसलेम की दुर्गति के सम्बन्ध में प्रचार किया। उसने प्रचार किया, रोदन और विलाप किया। एक मनुष्य को यह वेदना हुई, और लोगों की वही भावनाएँ हो गईं। एक की भावनाएँ दूसरों की भावनाएँ हो गईं। उन सबने तुर्कों और मुसलमानों के विरुद्ध अस्त्र-शस्त्र उठाये। इस तरह ईसाई धर्म-युद्ध हुए। तुम्हारी स्वाधीनता का युद्ध कैसे हुआ? उसी तरह। एक मनुष्य अर्थात् अमेरिका की पहली कांग्रेस के प्रेसिडेंट ने, जब लोग उससे सहमत नहीं हुए, तलवार खींची। उसने म्यान से अपनी तलवार निकाली और कहा—"मैं अकेला युद्ध, युद्ध, युद्ध के पक्ष में हूँ।" फिर तो सब लोगों को उसकी

बात ग्रहण करना पड़ी। कांग्रेस के उन्हीं लोगों को, जो युद्ध के विरुद्ध थे, और उसके विरुद्ध थे, उसका अनुसरण करना पड़ा। इस प्रकार तुम देखते हो, यदि तुम्हारे हृदय और चित्त एक न हों, तो ऐसी विलक्षण करतूतों के अधिकारी वे लोग कैसे बन सकते हैं? हम एक हैं इस एकता को भान करो।

अब हम दूसरे लोक में आते हैं। तुम देखते हो कि अपनी गाढ़ निद्रा (सुषुप्ति) की अवस्था में तुम सब एक हो। निद्रा सब को बराबर कर देनेवाली महान् वस्तु है। गाढ़ निद्रा-अवस्था में कोई भेद नहीं जान पड़ता, चाहे राजा हो या रंक, चाहे मख़मल के गद्दों पर, जिन पर सुन्दर चादरें बिछी होती हैं, सोनेवाला बादशाह हो, चाहे गलियों पर पड़ रहनेवाला ग़रीब भिखमंगा, निद्रा की दशा में एक ही हालत में हो जाते हैं। निद्रा की अवस्था में दोनों का विचार करो। क्या भेद है? दोनों एक और वही हैं। तुम अपनी सुषुप्ति-अवस्था में एक हो। तुम्हारी जाग्रत-अवस्था में तुम्हारे शरीर सब एक हैं और तुम्हारा मन और भावनाएँ, जो इस स्वप्न-भूमि में रहते हैं, सब एक हैं। अब हम वास्तविक आत्मा या असली तत्त्व पर विचार करते हैं। अरे, यहाँ तो एक आत्मा, असली तत्त्व, सच्चा स्वरूप है। भाषा अथवा किसी भेद-वाक्य के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है, यहाँ तो 'लहर' या 'तरंग' शब्द का भी प्रयोग नहीं हो सकता; इसमें तुम सब एक हो। तुम कहोगे—नहीं, मेरा बेटा मेरा है, किन्तु यह व्यक्ति मेरा नहीं है। यदि तुम ऐसा सोचते हो, तो तुम्हारी ग़लती है। ऐसा नहीं है। जिनको तुम अपने से भिन्न कहते हो, वे उतने ही तुम्हारे अपने हैं, जितना कि तुम्हारा पुत्र अपना है। तुम्हारे पिछले जन्मों में कितनी बार तुम्हारा उनसे भाइयों, पुत्रों, बेटियों या पिताओं का संबंध हुआ होगा, क्या तुम यह जानते हो? वही पुरुष जो आज तुम्हारा शत्रु है, पिछले जन्म में शायद पिता या पुत्र रहा हो। इस जन्म में जो आदमी

तुम्हारा पिता है, वह तुम्हारे अगले जन्म में शायद तुम्हारा पिता न हो। अपने अगले जन्म में तुम भिन्न माता-पिता से उत्पन्न होगे। तुम्हारी भावनाएँ और सहानुभूतियाँ बराबर बदल रही हैं और उसी तरह तुम्हारे मित्र और नातेदार, बहनें और भाई भी निरन्तर बदल रहे हैं। क्या ऐसा नहीं होता कि एक मनुष्य एक ही घर में कुछ लड़कों और लड़कियों के साथ जन्म लेता है और अपनी सारी ज़िन्दगी उनसे अलग बिताता है, अपनी ज़िन्दगी में उन्हें फिर कभी नहीं देखता? और क्या ऐसा नहीं होता कि एक मनुष्य इस देश में जन्म लेता है और सम्पूर्ण जीवन दूसरे देशों में बिताता है? कारण यह है कि जो लोग दूसरे देशों में पैदा हुए थे, वे उसके आध्यात्मिक संबंधी होते हैं। इस प्रकार तुम देखते हो, तुम्हें अपना भाईचारा केवल उन्हीं तक न परिमित करना चाहिए, जिन्हें तुम अपनी बहनें और भाई स्त्रियाँ या पति कहते हो। सब के सब, प्रत्येक और सकल तुम्हारे अपने स्वरूप हैं। इसे अनुभव करो। पदार्थ-विद्या इसे सिद्ध करती है।

अब राम उपसंहार करने लगा है। पदार्थ-विद्या स्पष्ट करती है कि जिस प्रकार यह देह विशेष, जिसे तुम अपना आप कहते हो, एक है; पैर के अँगूठे एड़ी से जुड़े हुए हैं, और वह शरीर के दूसरे अंगों से मिली हुई है, और तुम्हारे शरीर के सब अंगों में अनुवर्तन का नियम (Law of continuity) प्रचलित है और तुम्हारा शरीर एक है, अखंड है, सम्पूर्ण है, और इस आधार पर तुम देखते हो कि वह केवल एक शक्ति है, एक आत्मा है, जो चोटी से एड़ी तक परिपूर्ण है। वही आत्मा पैरों और हाथों में व्याप्त है। तुम वैसे ही यह देखते हो हो अब पदार्थ-विद्या सिद्ध करती है कि इस विश्व के विभिन्न पदार्थों का एक दूसरे से ऐसा सम्बन्ध है कि यदि अत्यन्त अविकसित जीवबीज (Undeveloped protoplasm) के पास हम उच्चतर रूप का जीवबीज रख दें और उसके बाद हम उससे भी उच्चतर प्रकार

जीव-बीज को रख दें, और इसी क्रम से रखते जायँ, और यदि इस विश्व में हम प्रत्येक वस्तु ठीक क्रम से सजा सकें, तो इस विश्व में हम हर एक पदार्थ में अनुवर्तन का संचार होता पायेंगे। इस अत्यन्त अभंग अनुवर्तन को हम सम्पूर्ण संसार को धारण किये पाते हैं। ऐसी दशा होने से, सम्पूर्ण विश्व एक अखंड शरीर हो जाता है। अब जिस प्रकार अपने सम्पूर्ण शरीर के मामले में तुम यह मानने को लाचार हो कि एक ही आत्मा कानों और पैरों में तुल्य रूप से व्याप्त हो रही है, उसी प्रकार इस सम्पूर्ण विश्व में, जो एक अविच्छिन्न शरीर है, तुम्हें एक ही आत्मा को, जो सूक्ष्मतम अणु से लेकर उत्तम-से-उत्तम देवता तक में परिपूर्ण या ओतप्रोत है, मानना पड़ेगा। इस प्रकार परमोच्च देवता की भी आत्मा वही है, जो अत्यन्त तुच्छ कीट की आत्मा है। इस प्रकार आत्मा के स्थित-बिन्दु से तुम सब एक हो।

मनुष्य का भ्रातृत्व स्थापित करने के लिए युक्तियाँ और दलीलें तुम्हारे सामने किसी अंश तक रक्खी जा चुकीं, अब राम इस सत्य के अमली प्रयोग पर जोर देगा। तुम बुद्धि से इसे चाहे न स्वीकार करो, किन्तु धार्मिक नियम तुम्हें यह सत्य मानने को विवश करेंगे। तुम्हें या तो अपने जीवन में इस पर अमल करना होगा या मरना होगा। दूसरा कोई उपाय नहीं है। यह हाथ है। एक बार यह स्वार्थ परायण हो गया और इसने भाईचारे वा एकता के नियम को तोड़ना चाहा। वह इस तरह तर्क करने लगा—"यह मैं हूँ, जो सारे दिन काम करता हूँ, किन्तु मेरे श्रम का सारा लाभ या तो पेट या शरीर के दूसरे अंग उठाते हैं, मैं कुछ नहीं खाता। मैं दाँतों या मुख को सब लाभ न उठाने दूंगा, हर एक वस्तु मैं आप ही लूंगा।" यह दलील देने के बाद हाथ इसे अमल में लाने को उद्यत हुआ। जो भोजन टेबिल पर परोसा गया—दूध, अन्न, माँस और सब प्रकार के सामान, फल, शाक इत्यादि—सभी पदार्थ अब हाथ को ख़ुद ही खाना चाहिए,

हाथ को स्वयं अपना लाभ उठाना चाहिए। हाथ ने एक आलपीन निकाली, अपने एक छेद किया और उसमें दूध उँडेल दिया। दूध को सुई के द्वारा भीतर पहुँचाया, ताकि मुंह लाभ न उठा सके। हांथ ने अपने आप को रोगी बना लिया, उससे उसका लाभ कुछ नहीं हुआ। एक और उपाय था। अपने को मोटा करने के लिए हाथ ने शहद लेना चाहा। यह मधु कहाँ से आता है? मधु-मक्खी से। इस लिए हाथ ने मधुमक्खी पकड़ी और उसने अपने को कटवा लिया। हाथ को बहुत-सा मधु मिल गया। वह ख़ूब मोटा हो गया। किन्तु ओह! इससे तो हाथ पीड़ित और व्यथित हो गया। जब हाथ को पीड़ा-पर-पीड़ा होने लगी, तब तो कुछ देर बाद उसके होश ठिकाने आ गये। हाथ ने कहा—"मैं जो कुछ उपार्जन करता हूँ, वह सब केवल मुझे न मिलना चाहिए। मैं जो कुछ कमाता हूँ, वह सब पेट में जाना चाहिए और वहाँ रुधिर के द्वारा, हाथों और पैरों के द्वारा, शरीर के प्रत्येक अंग द्वारा उसका व्यवहार होना चाहिए, और तभी, केवल तभी, मैं अपना लाभ पा सकता हूँ।" दूसरा कोई उपाय नहीं है। तभी हाथ का हित हो सकता है। अब हाथ यह मानने को लाचार हुआ कि हाथ की आत्मा इस छोटे-से क्षेत्र में क़ैद नहीं थी। हाथ की आत्मा का उपकार तब होगा, जब समग्र शरीर की आत्मा का लाभ होगा, जब नेत्रों की आत्मा का कल्याण होगा। हाथ की आत्मा वही है, जो नेत्रों की आत्मा है, कानों की आत्मा तथा संपूर्ण शरीर की आत्मा है। अतएव हाथ ने जिस तरह चेष्टा की थी, उसी तरह स्वार्थपरायण होने की चेष्टा करने से तुम्हें दुष्परिणाम भोगने पड़ेंगे, तुम्हें उसी तरह पीड़ित होना पड़ेगा, जिस तरह अपनी स्वार्थपरता को कार्य में परिणत करने की चेष्टा करने से बेचारे हाथ को भोगने पड़े थे। दैवी क़ानून तुम्हें अपने आप को अपनी श्रेणी से पृथक होने की अनुमति नहीं दे सकता। जब तुम अपने आप को अपने संगी-साथी लोगों से भिन्न समझते हो, तब

अत्यन्त पवित्र सत्य-नियम भंग करते हो। जो व्यापारी अपने ग्राहकों के स्वार्थ को अपना ही नहीं समझते, या जो दुकानदार अपने ग्राहकों के स्वार्थों को अपने स्वार्थों से अभिन्न नहीं समझते, उनसे लोग भागते और जी चुराते हैं, और वे अपने आप बरबाद हो जाते हैं। तुम्हें अपने जीवन में इसे अनुभव करना होगा, तभी और केवल तभी तुम फूलो-फलोगे। ऐ हाथ, तेरी आत्मा समग्र विश्व की आत्मा है, तेरी आत्मा आँखों और पैरों और दाँतों तथा शरीर के प्रत्येक दूसरे भाग की आत्मा है, यह भान करो, यह अनुभव करो। यदि तुम अपने आपको कम्बख्ती से परे रखना चाहते हो और अपने को सुखी करना चाहते हो, तो हर एक और सबके इस इकाई को अनुभव करो। तुम्हारा आचरण प्रकट करेगा, तुम्हारा अपना अनुभव सिद्ध करेगा कि जब तुम इस एकता को भान और अनुभव करते हो, जब तुम इस सत्य पर अपने चित्त को एकाग्र करते हो तब तुम्हारे आस-पास का सब कोई तुम्हारी सहायता के लिए आने को उसी तरह बाध्य है, जिस तरह हाथ उस अंग की सहायता को आता है, जिस में खुजली या पीड़ा होती है। जहाँ तुम्हें खुजली जान पड़ती है, हाथ तुरन्त वहाँ पहुँच जाता है। इसी तरह यदि तुम अनुभव करो कि तुम्हारा अपना आप, आत्मा या तुम्हारी सच्ची प्रकृति वही है, जो तुम्हारे साथियों की है, जिनका संबंध तुम से आवश्यकता समय वैसा ही होता है, जैसे तुम्हारे सच्चे अपने आप का, तो तुम्हारे साथी तुरन्त ही आवेंगे और तुम्हारी सहायता करेंगे। यह मामला अनुभव का है, अमल का है और परीक्षा से प्रमाणित हुआ तथ्य है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

ज्ञान-रश्मि

१

कोई मनुष्य उस समय तक सर्वरूप परमात्मा के साथ अपनी अभेदता कदापि अनुभव नहीं कर सकता, जब तक कि समस्त राष्ट्र के साथ अभेदता उसके शरीर के रोम-रोम में जोश न मारने लगे।

२

यह अनुभव करके कि सारा भारतवर्ष प्रत्येक भारतवासी में मूर्तिमान है, प्रत्येक भारत-सपूत को सम्पूर्ण भारत की सेवा में तत्पर रहना चाहिए।

३

व्यक्तिगत और स्थानीय धर्म को किसी प्रकार राष्ट्रीय धर्म से ऊँचा स्थान न देना चाहिए, इनके यथोचित सामंजस्य से ही सुख मिल सकता है।

४

राष्ट्र के हित की वृद्धि के लिए प्रयत्न करना ही आधिदैविक शक्तियों अर्थात् देवताओं की आराधना करना है।

५

ईश्वरानुभव के लिए आवश्यकता होती है सन्यास भाव की अर्थात् स्वार्थ को नितान्त त्याग ने की। इस परिच्छिन्नात्मा को भारत-माता की महान् आत्मासे बिल्कुल अभिन्न कर दिया जाय।

(स्वामी राम के ऐसे ही चमकते हुए वाक्य 'राम-हृदय' में पढ़िए)

मुद्रक : लखनऊ पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ। फोन : २४८८३।